UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178838
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 S56B Accession No. H 1749

Author शरतचन्द्र।

Title ब्राह्मण की बेटी

This book should be returned on or before the date last marked below.

सुलभ साहित्य-माला

पाँचवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

बाम्हनकी बेटी, प्रकाश और छाया, विलासी, एकादशी बैरागी, बाल्य-स्मृति

५

अनुवादकर्त्ता—

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४

दूसरी बार
सितम्बर, १९४०

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केलेवाडी, गिरगांव, बम्बई

प्राक्कथन

युग-प्रवर्तक महात्मा गांधीजीने गुजराती-साहित्य-सम्मेलनके गत अधिवेशनमें सभापतिकी हैसियतसे कहा था—" एक स्त्री-शिक्षा-प्रचारक संस्थाको यह शिकायत है कि साहित्यकार स्त्रियोंको वास्तविक रूपमें चित्रित नहीं करते। स्त्रियाँ उनसे पूछती हैं, 'आपने स्त्रीका सौन्दर्य कहाँ देखा है? उसकी देहकी सुन्दरतासे आपका क्या सम्बन्ध है? कभी आपने माताका और पत्नीका सौन्दर्य निहारनेका कष्ट उठाया है? मेरे मर जानेके बाद क्या आप मेरी सुन्दर देहमें मसाला भरकर उसे घरमें रक्खे रहेंगे?' और जब वे ऐसा पूछेंगी तो साहित्यकार ज़रूर शर्मिन्दा हो जायगा। आधुनिक पुस्तकोंमें स्त्रीका सच्चा वर्णन नहीं मिलता। मैं समझ नहीं सकता कि स्त्रीके शरीरके वर्णनोंसे आपका क्या ताल्लुक है? साहित्यमें स्त्रियोंको गुड़िया क्यों बनाया जाता है, उनके मातृरूपका वर्णन क्यों नहीं किया जाता? यह मैं उक्त संस्थाकी सौ-पचास बहिनोंके विचारसे नहीं कह रहा हूँ; बल्कि स्त्री-हृदयकी थाह लेकर कहता हूँ। साहित्यके लिए जब आप कलम उठाइए तो यही सोचकर उठाइए कि स्त्रियाँ मातायें हैं। इस विचारसे जब आप लिखेंगे तो आपकी कलमसे स्त्रीके बारेमें जो कुछ निकलेगा वह उतना ही सुन्दर और फलप्रद होगा, जितने कि सुहावने आकाशसे बरसनेवाले बादल, जो पृथ्वीरूप स्त्रीको उपजाऊ बनाते हैं।"

मालूम होता है कि स्वनामधन्य शरत् बाबूने महात्माजीके इस अनुरोधको अक्षरशः माना है और उन्होंने अपनी रचनाओंमें स्त्री-पात्रोंको इसी प्रकारकी भावनाओंसे चित्रित किया है। उनके हृदयमें स्त्रियोंके प्रति बहुत ही अधिक आदर-भाव है। उनकी लिखी हुई सारी रचनाओंको आप पढ़ जाइए, उनमें न तो कहीं आपको स्त्रियोंके शरीर-सौन्दर्यका वर्णन मिलेगा और न अन्य किसी

तरहकी अश्लीलता। एक बार उन्होंने स्वयं 'बंगवाणी'में लिखा था कि, 'आलिङ्गन तो दूरकी बात है, चुम्बन भी मैं अपनी रचनाओंमें कहीं न लिख सका।' वास्तवमें शरच्चन्द्र कुछ कुछ उस ढंगके साहित्यकारोंमें हैं जिन्हें अँग्रेजीमें 'प्यूरिटन' कहते हैं। उनके अधिकांश नायक-नायिका सर्वदा ही यौन-मिलनसे दूर रहे हैं, उनका प्रेम बहुत ही संयत और बहुत ही त्यागमय चित्रित हुआ है। वे सचमुच ही स्त्रियोंमें मातृ-भावका ही विशेषरूपसे दर्शन करते हैं और बाह्य सौन्दर्यकी अपेक्षा उनके भीतरी सौन्दयको ही महत्त्व देते हैं। इसीलिए, शरत् बाबूकी कलमसे जो कुछ निकला है, वह बहुत ही सुन्दर और फल-प्रद है।

शरत् बाबू मातृ-जातिके प्रति समाजके अत्याचारोंको सहन नहीं कर सकते; परन्तु, फिर भी, वे सुधारक नहीं हैं; वे सुधारकसे बहुत ऊँचे हैं। वे कलाकार हैं। सुधारक जिस नींवपर अपनी इमारत खड़ी करता है कलाकार उस नींवकी भी नींव निर्माण करता है। सुधारक केवल मनुष्यकी बुद्धिको अपील करता है; परन्तु कलाकार उसके अन्तर्तम निगूढ़ प्रदेशों तकको हिला देता है। सुधारकका लक्ष्य मस्तक है जब कि कलाकारका हृदय।

शरत्साहित्यके इस भागमें,—प्रारंभका एक उपन्यास, तीन कहानियाँ और अन्तका एक रेखा चित्र,—इस तरह सब मिलाकर पाँच कृतियाँ प्रकाशित हो रही हैं और जहाँ तक हम जानते हैं हिन्दीमें ये पाँचों ही नई हैं।

बाम्हनकी बेटी ('बामुनेर मेये') में सन्ध्या और अरुणका प्रणय बहुत ही सूक्ष्म रेखाओंमें बहुत ही सावधानीसे अंकित किया गया है। वह बहुत ही गूढ़ और मर्मस्पर्शी है। सन्ध्याके मुँहसे वह उसी समय प्रकट होता है जब उसकी माता अरुणको बुला देनेके लिए अपने पतिसे आग्रह करती है। इसके पहले यही माता अरुणके हाथसे कोई चीज़ ले लेते समय उससे छू जानेके कारण सन्ध्याको स्नान करनेके लिए बाध्य कर चुकी थी। वह अकुलीन तथा हीन ब्राह्मण था और विलायत-यात्रा कर आया था। सन्ध्याने कहा—"मा, उन्हें तुम बारबार क्यों अपमानित करती हो? तुम्हारा उन्होंने क्या अपराध किया है? नहीं, तुम उन्हें इस मकानमें हरगिज़ नहीं बुला सकतीं।...हमारे साथ उनका ऐसा कौन-सा सम्बन्ध है जो तुम उन्हें रोकोगी कि घर-द्वार बेचकर गाँव छोड़कर मत जाओ? अगर तुमने उन्हें बुलाया तो मैं तुम्हारी ही कसम खाकर कहती हूँ कि उस तालाबमें जाकर डूब मरूँगी।" यह उसके भीतरी प्रणयका अभिमानके रूपमें प्रकट

हुआ विस्फोट था। कुल-मर्यादाकी वेदीपर अपने आपको उत्सर्ग करके भी वह अपने प्रेमीके सम्मानकी रक्षाके लिए व्यग्र हो उठी थी। उसे उसकी मर्यादा-रक्षाकी इतनी अधिक चिन्ता हुई कि उसने स्वयं अरुणके घर जाकर कह दिया कि, 'अब तुम मेरे घर न आना।' और जब अरुण स्नेह-विकल होकर पूछता है, 'प्रायश्चित्त करनेसे क्या इसका कोई उपाय हो सकता है?' तब वह कहती है, 'एक दिन जिस आत्माभिमानके कारण तुम स्वयं प्रायश्चित्त करनेके लिए राजी नहीं हुए थे, आज उसे ही विसर्जन कर दो, यह मैं कभी न कहूँगी। तुम कुछ भी करो, पर अब यहाँ मत रहो।' इस प्रेममें कितना संयम है, कितना आत्मोत्सर्ग है! और अन्तमे तो उसका यह संयम और आत्म-दमन पराकाष्ठापर पहुँच जाता है जब अरुण बहुत-कुछ सोच-विचारके बाद उसके साथ विवाह कर लेनेके प्रस्तावपर राजी हो जाता है। कुछ समय पहले यद्यपि सन्ध्याने स्वयं ही यह प्रस्ताव किया था, फिर भी वह इस मुँहमाँगी मुरादसे मुँह फेरकर अपने पिताके साथ वृन्दावन चली जाती है। लेखकने भी यहाँ अपनी कलमपर काबू रखनेका महान् सामर्थ्य प्रकट किया है।

सन्ध्याका पिता प्रियनाथ डाक्टर एक अद्भुत पात्र है,—बहुत ही सरल, भोला-भाला और स्वप्न-संचालित। वह केवल रोगी देखना और 'रेमिडी सिलेक्ट करना' जानता है, परंतु यह नहीं समझता कि रोगीका मन कितनी विचित्र चीज है। मौतका डर न होनेपर भी रोगी कह सकता है कि मैं दर्दके मारे मरा जाता हूँ या किसी दिन गिरकर मर जाऊँगा। उसके मनकी गति या अनुभूति पुस्तकमें लिखे हुए जैसी सुस्पष्ट नहीं होती। डाक्टरने केवल पुस्तकोंमें पढ़ा है कि कोई चीज़ घिसने जैसा, मलने जैसा, सुई चुभने जैसा या बिच्छूके काटने जैसा दर्द होता है। परन्तु, यह उसे कौन समझावे कि ये सब बातें केवल बातें हैं, मूल चीज़ है दर्द। वह बारबार कहता है कि महात्मा हेरिंगने रोगका नहीं रोगीका इलाज करनेको लिखा है; परन्तु, उसके निकट रोग और रोगी दोनों ही पुस्तककी बातें हैं। इसीलिए, जब परान डाक्टरने उसकी होमियोपैथी दवा खाकर उसको निकम्मा बतला दिया, तब इसने भी उसका दिया हुआ कास्टर आइल पी लिया! वह संसारमें रहता अवश्य है; परन्तु, उसके संसारमें केवल कुछ होमियोपैथी पुस्तकें और कुछ कल्पित रोगी ही हैं। विपिन और परान तो चिकित्सा करते हैं धनोपार्जनके लिए, परन्तु, प्रियनाथ जीता है केवल चिकित्सा करनेके लिए। इसीलिए, वह

रोगी ढूँढ़ता फिरता है और रोगी उसे ढूँढ़ते फिरते हैं। उसके निकट और किसीका मानो अस्तित्व ही नहीं है।

इस उपन्यासमें देहाती लोगोंकी स्वार्थपरता, षड्यंत्रपरायणता और प्रीति-हीन तथा अनुभूतिहीन धर्मनिष्ठाके बड़े ही सजीव चित्र अंकित किये गये हैं। गोलोक गाँवोंका मुखिया सरपंच है। बाहरी आचार-विचारमें वह महान् धर्मात्मा है; परन्तु, वास्तविक धर्म-बोधका उसमें सर्वथा अभाव है। एक अनाथ विधवाका नीचताके साथ सर्वनाश करके वह उसके प्रति जरा-सी भी सहानुभूति नहीं बतला सकता। उस पाजीको जीव-हत्या करनेमें संकोच नहीं, स्त्रीका सर्वनाश करनेमें हिचक नहीं और जिस बेचारीको पाप-पंकमें डुबा दिया उसके प्रति तिल-भर भी करुणा नहीं। रासू बाम्हनी भी उससे कम नहीं है। कहाँ तो वह झूठमूठ ही एक अछूत लड़कीसे छू जानेपर नातिनीको नहलाती है और 'धर्म धर्म' की पुकार मचा देती है और कहाँ ज्ञानदाको गर्भपात करनेकी प्रेरणा करनेमें और गोलोकको बदनामीसे बचानेके लिए निरीह प्रियनाथको भी ज्ञानदाके साथ अनुचित सम्बन्ध रखनेवाला कहनेमें नहीं हिचकती! इस तरह जो धर्म केवल बाहरी आचार-विचारको ही सब कुछ समझना सिखाता है उसकी परिणति इस धर्महीन निष्ठुरतामें ही होती है।

इस उपन्यासमें जाति और कुलके अभिमानका खोखलापन ऐसी खूबीसे प्रकट हुआ है कि देखते ही बनता है और तब हर्षचरित-टीकाका यह श्लोक बरबस याद आ जाता है—

'अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामिनीमूले का जाति-परिकल्पना॥'

अर्थात् संसार अनादि है,—अगणित पीढ़ियोंसे चला आ रहा है, कामवासना दुर्निवार है,—रोकी नहीं जा सकती, और फिर कुल स्त्री-मूलक हैं,—वासना-दुर्बल स्त्रियाँ ही कुलीनता-अकुलीनताकी जड़ हैं; ऐसी दशामें जाति-कुलकी कल्पना ही क्या हो सकती है? कौन कह सकता है कि हमारे कुलमें अनादि-कालसे कभी किसी स्त्रीने व्यभिचार नहीं किया,—हमारा कुल वैसा ही पवित्र बना हुआ है तथा हमारा कुल और जातिका अभिमान मिथ्या नहीं है?

प्रकाश और छाया ('आलो ओ छाया') में निषिद्ध प्रेमकी विशुद्धता अंकित की गई है। इस कहानीका प्रारंभ होता है यज्ञदत्त और बाल-विधवा

सुरमाका अवैध प्रणय लेकर। दोनोंका सम्बन्ध स्नेह और आनन्दसे लबालब भर है; परन्तु, उसपर विषादकी छाया भी पड़ी हुई है। सुरमाने सोचा कि यज्ञदत्त मेरे कारण अपना जीवन व्यर्थ कर रहा है और तब वह उसका विवाह करनेके लिए व्यग्र हो उठती है। परन्तु, विवाह हो जानेपर उसका मन एक साथ उत्साह और निराशासे भर जाता है। उसने स्वयं ही तो आग्रह करके ब्याह कराया; परन्तु, जब देखा कि यज्ञदत्त स्वयं उस ओर झुक रहा है, तब उसका हृदय निराशासे भर गया। ब्याहके बाद यज्ञदत्तने महसूस किया कि मैंने बड़ी भारी भूल की,—मैंने अपराध किया है और सुरमा मुझे प्राणपणसे क्षमा कर रही है तब उसने अपनी स्त्रीसे पृथक् रहना शुरू किया,— पति और प्रणयीके कर्तव्यके बीच सामंजस्य बनाये रखनेकी चेष्टा की; परन्तु, उसमें वह सफल नहीं हुआ। प्रतुलकुमारी और सुरमाके प्रेमका यह द्वन्द्व ही इस कहानीमें चित्रित किया गया है।

बिलासी ठीक अर्थमें कहानी है या नहीं, इसमें सन्देह है, फिर भी यह उत्कृष्ट रचना है। यह केवल मृत्युंजय और बिलासीकी ही व्यक्तिगत कहानी नहीं है। इसके साथ हिन्दू समाजकी स्वार्थान्ध संकीर्णता और जाति-द्वेषके प्रति लेखकने जो अंगुलि-निर्देश किया है, उससे इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है।

एकादशी बैरागी एक रेखा-चित्र है। एकादशी एक छोटी जातिका अतिशय कंजूस ब्याज-खोर साहूकार है। आसामियोंके साथ उसका व्यवहार बहुत ही निर्मम है, फिर भी उस कठोर अर्थ-पिशाचके हृदयमें स्नेहकी फल्गुधारा बहती है। अपनी कलंकिनी बहनको आश्रय देनेके कारण उसे जाति, कुल, गाँव, समाज,—सब कुछ छोड़ देना पड़ा; परन्तु, वह विचलित नहीं हुआ। उसमें जैसा असीम स्नेह है सत्साहस भी वैसा ही अतुलनीय है। वह अपना प्राप्य किसीसे छोड़ता नहीं और दूसरोंके न्याय्य देनेसे कभी मुकरता नहीं। कहानी छोटी है, प्लाट बिल्कुल नगण्य है, फिर भी प्रारंभमें एकादशीके सम्बन्धमें जो धारणा होती है वह अन्तमें बिल्कुल परिवर्तित हो जाती है। और मजा यह, कि कहानीमें कोई आकस्मिक घटना नहीं, पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें कोई असंगति नहीं।

बाल्य-स्मृतिमें गदाधरके क्षुद्र जीवनका क्षुद्र इतिहास बहुत ही निपुणतासे अंकित हुआ है। उसकी मेसकी नौकरीका वर्णन बहुत ही संक्षिप्त होनेपर भी सर्वांग-सुन्दर है। उसके बाद चिमनीका टूटना, रुपयोंका चोरी जाना, नौकरीसे

अलग किया जाना और डेढ़ रुपयेका म० आ० भेजना,—इन थोड़ी-सी घटनाओंसे ही उसका जीवन परिस्फुट हो उठा है। वर्णनमें कहीं कोई अतिशयोक्ति नहीं, घटना-बहुलता नहीं,—फिर भी, कहीं अस्पष्टता या असम्पूर्णता नहीं। सुकुमारका शिशु-हृदय भी अनेक रंगोंसे रंजित हो उठा है। गदाधरके जीवनकी प्रत्येक घटना उसके मनमें गहराईसे अंकित हो गई है और उसके हृदयकी वृत्तियाँ गदाधरके संस्पर्शमें आकर परिपुष्ट हो गई हैं। उसके ज्ञानका क्षेत्र बढ़ गया है।

इस भागकी पहली, तीसरी और चौथी,—ये तीन रचनायें बहुत ही मर्मस्पर्शिनी और हमारे सामाजिक विचारोंमें क्रान्ति करनेवाली हैं। ये कट्टरसे कट्टर रूढि-भक्तोंको अपना हृदय टटोलनेके लिए बाध्य करती हैं। यह असंभव है कि इन्हें पढ़कर हमारे हृदयमें हरिजनों, अकुलीनों और पतितोंके प्रति सहानुभूति उत्पन्न न हो। इनका जितना भी प्रचार हो, कल्याणकारी है।

निवेदक
नाथूराम प्रेमी

बाम्हनकी बेटी

१

मुहल्ला घूमना खतम करके रासमणि तीसरे पहर घर लौट रही थी। एक दस-बारह वर्षकी नातिनी उसके आगे आगे चल रही थी। गाँवके कम-चौड़े रास्तेके इस तरफ बँधा हुआ बकरीका बच्चा उस तरफ़ पड़ा सो रहा था। सामने निगाह पड़ते ही दादी नातिनीपर बिगड़ पड़ी—'अरी ओ छुकड़िया, रस्सी मत लाँघ जाना!—लाँघ गई? हरामजादी सरगकी तरफ मुँह उठाके चलती है? आँखसे दिखता नहीं कि बकरी बँधी है!'

नातिनीने कहा—बकरी तो सो रही है दादी।

"सो रही है। बस अब कोई दोष थोड़े ही है! इस मंगल-सनीचरके* दिन तू खुशीसे रस्सी लाँघ गई,—हैं!"

"इससे क्या होता है दादी?"

"क्या होता है! मुँहजली, बाम्हनके घरकी नौ-दस सालकी धींगरी लड़की, इतना भी नहीं सीखी कि बकरीकी रस्सी लाँघना नहीं चाहिए,—किसी तरह नहीं! और फिर कहती है,—क्या होता है! इन मुओंके बकरी पालनेके मारे तो, लोगोंका राह चलना मुश्किल हो गया! ऐं, मंगलके दिन लड़की रस्सी लाँघ गई,—क्यों? किस लिए बीच सड़कपर बकरी बाँधी गई? पूछती हूँ, उनके घर क्या लड़के-लड़कियाँ नहीं हैं? उनका क्या कुछ भला-बुरा नहीं हो सकता?"

---

* बंगालमें मगल और शनिवारके दिन इस तरह रस्सीका लाँघना अशुभ समझा जाता है।

अकस्मात् उसकी दृष्टि पड़ गई एक बारह-तेरह सालकी दूलेकी × लड़कीपर। वह घबराई हुई अपने बकरीके बच्चेको हटाने आ रही थी। उसे देखते ही बुढ़िया अनुपस्थितको छोड़कर उपस्थितपर टूट पड़ी। तीखे स्वरमें बोली—तू कौन है री? मरी, तू चलती कैसे है, देहसे सटी ही जाती है! आँख-कानसे कुछ सूझता नहीं तुझे? लल्लीसे अपना आँचल तो नहीं छुआ दिया?

दूलेकी लड़की सिटपिटाकर बोली—नहीं दादीजी, मैं तो हिऑसे जा रही हूँ।

रासमणिने अपना मुँह बहुत ही विकृत करते हुए कहा—हिऑसे जा रही हूँ!—तुझे हिऑसे जानेकी ज़रूरत? बकरी तेरी ही मालूम होती है? मैं पूछती हूँ, तू किस जातकी लड़की है?

"हम लोग दूले हैं दादाजी।"

"दूले? ऐं! इतनी अबेरमें तूने लड़कीको छूकर नहलवाया, क्यों?"

नातिनी बोल उठी—मुझे तो उसने नहीं छुआ दादी—

रासमणिने डाँट लगाई,—तू चुप रह मुँहजली! मैंने खुद देखा, इस छोकरीके आँचलका छोर तुझसे छुआ-सा मालूम हुआ। जा,—तालाबमें डुबकी लगाकर मर,—जा! नहा ले, तब घरमें घुसना। नहीं, अब तो जात-जनम बचाना भी मुश्किल हो गया! नीच जातकी बढ़न्त हो रही है, देवता-ब्राम्हनको अब कोई पूछता ही नहीं। हरामज़ादी, दूलोंके मुहल्लेसे यहाँ आई है बकरी बाँधने, क्यों?

दूलेकी लड़कीके भय और लज्जाकी सीमा न रही। वह बकरीके बच्चेको छातीसे लगाकर सिर्फ इतना ही बोली—दादीजी, मैंने नहीं छुआ।

"छुआ नहीं, तो इस मुहल्लेमें आई क्यों मरने?"

लड़कीने हाथ उठाकर पासहीके किसी एक अदृश्य घरकी ओर इशारा करके कहा—महाराजजीने अपनी उस सारके पीछे हम लोगोंको रहनेकी जगह दी है। माको और मुझे नानीने घरसे निकाल दिया है न, इसीसे।

किसीकी भी हो और किसी भी कारणसे हो, दूसरेकी दुर्गतिके इतिहाससे रासमणिका क्रुद्ध हृदय कुछ प्रफुल्ल हुआ, और इस रुचिकर संवादको विस्तारके साथ जाननेके लिए कुतूहलके साथ उसने पूछा—अच्छा? तो कब निकाल दिया?

"परसों रातको दादीजी।"

"अच्छा तो तू एककौड़ी दूलेकी लड़की है! तो, कहती क्यों नहीं? एक-

---

× बाग्दी-जातिकी एक श्रेणी। निम्न-जाति।

कौड़ीके मरनेके साथ ही बूढ़ेने सबको निकाल बाहर किया। छोटी जातके मुँहमें लगे आग! उसने निकाल दिया सो क्या अब तुम लोग बाम्हनोंके मुहल्लेमें आकर रहोगी? तुम लोगोंका दिमाग़ तो कम नहीं! कौन लाया तेरी माँको? रामतनुका दमाद लाया होगा? नहीं तो और किसमें ऐसी विद्या है! घर-जमाई है, तो घर-जमाईकी तरह रहे; ससुरका धन मिल गया है सो अब क्या मुहल्लेमें भंगी-चमार-डोम-दूले लाकर बसायेगा?"

यह कहते हुए रासमणिने आवाज़ दी—सन्ध्या, ओ सन्ध्या, घरमें है री?

पड़ती पड़ी हुई ज़मीनके उस तरफ रामतनु बनर्जीकी खिड़की है। बुलाहट सुनकर पासकी खिड़की खोलकर एक उन्नीस-बीस बरसकी सुन्दर लड़कीने मुँह निकालकर जवाब दिया, "कौन बुला रहा है? अरे ये तो नानी हैं। क्यों, क्या बात है?" कहती हुई वह बाहर निकल आई।

रासमणिने कहा—तेरे बापकी अकल कैसी हो गई है, बेटी? तेरे नाना रामतनु बाबू एक नामी कुलीन थे, उन्हींके मकानमें आज बसने लगे बाग्दी दूले! कैसी घिरनाकी बात है बेटी!

इतना कहकर गालपर हाथ रखकर फिर कहने लगी—अपनी माको तो जरा बुला दे। जग्गो इसका क्या इन्तजाम करती है, करे; नहीं तो, चटरजी भइयाके पास जाकर मैं खुद कह आऊँगी। वे ठहरे जमीनदार, एक नामी-गरामी बड़े आदमी। वे क्या कहते हैं, सो भी सुन लूँ।

संध्याने बहुत ही आश्चर्यके साथ पूछा—क्या हुआ है नानीजी?

"बुला न अपनी माको! उसे कहे जाती हूँ क्या हुआ है।"

इतना कहकर अपनी नातिनीकी तरफ इशारा करके कहा—यह लड़की मंगलवारके दिन बकरीकी रस्सी लाँघ गई, और उस दूलेकी छुकड़ियाने इसको अपना आँचल छुआ दिया—

संध्याने उस लड़कीसे पूछा—तूने छू दिया है?

वह बेचारी अब तक उस बच्चेको छातीसे लगाये एक तरफ खड़ी थी, रोने गलेसे अस्वीकार करती हुई बोली—नहीं, जीजी—

रासमणिकी नातिनी भी करीब करीब साथ ही साथ बोल उठी—नहीं, संध्या जीजी, उसने मुझे नहीं छुआ, वो तो वहाँसे—

मगर उसकी बात दादीके 'हुं' कारके मारे जहाँकी तहाँ दबकर रह गई।

"फिर नहीं कह रही है हरामज़ादी! चल, तू पहले घर चल। छुआ है या नहीं, वहाँ चल कर बताऊँगी।"

संध्याने हँसते हुए कहा—ज़बरदस्ती नहलवाओ तो वह क्या कर सकती है, नानीजी।

संध्याकी हँसीसे रासमणि जल-भुन गई। बोली—ज़बरदस्ती करूँ, या न करूँ, सो मैं समझ लूँगी, लेकिन तेरे बापका यह कैसा चलन है? भला कौन-सा भला आदमी है जो अपने मकानमें छोटी जातको बसाता है? लोग कहते हैं, जातका दूले। सो इन दूलोंको ही लाकर बाम्हनोंके मुहल्लेमें बसा दिया है। मैं कहती हूँ, घर-जमाई जैसे रहते हैं, वैसे ही रहें तो अच्छा है।"

पिताके विषयमें इस तरहकी अपमानजनक बात सुनकर मारे क्रोधके संध्याका मुँह सुर्ख़ हो उठा, उसने भी कठोर होकर जवाब दिया—बाबूजी किसी दूसरेके घर छोटी जात बसाने तो गये नहीं, नानीजी। अच्छा समझ कर अपनी ही जगहमें ठौर दिया है, इससे तुम्हें इतनी जलन क्यों हो गई?

"मेरे जलन क्यों हो गई? क्यों जलन हुई, देखेगी तू? जाऊँ एक बार चटरजी भइयाके पास? कहूँ जाकर?"

"हाँ, अच्छी बात है, जाकर कह दो न! बाबूजीने कुछ उनकी जगहमें तो दूले बसाये नहीं हैं,—जो वे बड़े आदमी हैं इसलिए सर ही काट डालेंगे।"

"अच्छा! जितना बड़ा मुँह नहीं, उतनी बड़ी बात! अरी वे और कोई नहीं,—स्वयं गोलोक चटरजी हैं! तेरे बापने शायद अभी तक उन्हें पहचाना नहीं!—अच्छा—"

शोर-गुल सुनकर जगद्धात्री बाहर निकल आई। उसे देखते ही रासमणि अग्निकांडकी तरह प्रज्वलित हो उठी। अपने चीत्कारसे मुहल्ले-भरको चकित करती हुई बोली—सुन जग्गो, अपनी विद्याधरी लड़कीके मिज़ाजकी बातें जरा सुन ले! पढ़ना-लिखना सिखा रही है न! कहती है, कह दे जाकर अपने गोलोक चटरजीसे,—बाबूजीका वे सर उतरवा लें! कहती है, अच्छा किया है, अपनी जगहमें दूले-डोम बसाये हैं;—किसीके बाप दादेकी जगहमें नहीं बसाये,—ऐसे बहुत-से बड़े आदमी देखे हैं; जिससे जो करते बने, कर ले। सुन ले, अपनी लड़कीकी बातें सुन ले!

जगद्धात्रीने विस्मित और कुपित होकर पूछा—कहीं हैं तूने ये सब बातें?

संध्याने सिर हिलाकर कहा—नहीं, मैंने ऐसे नहीं कहा।

रासमणिने उसीके मुँहपर हाथ हिलाते और गरजते हुए कहा—नहीं कहा? ये लोग सब गवाह नहीं हैं?

परन्तु, दूसरे ही क्षण उसने अपने स्वरको अनिर्वचनीय कौशल्यके साथ ऊँचे सप्तकसे एकदम खादके निखादपर उतार लिया और जगद्धात्रीको सम्बोधित करके कहना शुरू किया—बेटी, मैंने अच्छी ही बात कही थी। मंगलवारके दिन लड़की बकरीकी रस्सी लाँघ गई, इसीसे कहा, अरे, कौन इस तरह रास्तेपर बकरी बाँध गया भाई? बस, इतना सुनते ही दूलेकी छुकड़िया दौड़ी आई और बिटियाके मुँहपर घुमाकर आँचल मार ही तो दिया उसने! बोली, महाराजजीकी जगहमें बकरी बाँधी है, तुम बोलनेवाली कौन? इसीसे बेटी, तुम्हारी लड़कीको बुलाकर बस इतनी बात कह रही थी कि बिटिया, इतनी अबेरमें इसे नहलाना पड़ेगा, मंगलके दिन बकरीकी रस्सी लाँघ गई,—सो तुम्हारे बाबूजी अगर इन लोगोंको दूले-मुहल्लेसे अपने यहाँ ले ही आये हैं, तो बहन, बकरी-अकरी जरा देख-भालकर बाँधनेके लिए कह देना,—छोटी जातको आचार-विचारका ज्ञान तो होता नहीं,—नहीं तो चटरजी-भइया बूढ़े आदमी ठहरे; इसी रास्ते अकसर निकला करते हैं,—फजूलमें गुस्सा हो जायँगे,—बस बेटी, इतना ही कहा था। इसीपर तेरी लड़कीने बस मारना-भर बाकी छोड़ा है। कहती है, जा जा अपने चटरजी-भइयाको बुला ला। उसके जैसे बड़े आदमी मैंने बहुत देखे हैं। उसके बापकी ज़मीनपर जब डोम-दूले बसाने जायँ, तब वो आँखें दिखाने आवे। अच्छा, तुम्हीं बताओ तो बेटी, ये सब क्या लड़कीके कहनेकी बातें है?

जगद्धात्रीने आग-बबूला होकर कहा—कही हैं ये सब बातें?

संध्या अब तक निर्वाक् विस्मयके स्मथ रासमणिके चेहरेकी तरफ देख रही थी, माकी आवाज़ सुनकर चौंक पड़ी और गरदन फेरकर सिर्फ इतना ही बोली—नहीं।

"नहीं कहा, तो क्या मौसी झूठ बोल रही हैं?"

"पूछो बेटी, यही बात पूछो अपनी लड़कीसे।"

संध्याने क्षण-भर मौन रहकर माके प्रश्नका उत्तर दिया—मैं नहीं जानती मा, किसकी बात झूठी है। मगर, तुमने अपनी लड़कीकी अपेक्षा अगर इन मानी-हुई मौसीको ही ज्यादा पहचाना हो तो ऐसा ही सही।

इतना कहकर वह दूसरे प्रश्नके पहले ही खुले हुए दरवाज़ेसे भीतर चली गई। दोनोंकी दोनों आँखें फाड़कर उस तरफ देखती रह गईं, और मौका समझकर दूलेकी लड़की भी बकरीके बच्चेको छातीसे चिपकाये चुपचाप वहाँसे खिसक गई।

रासमणिने कहा—देख लिया न जग्गो, अपनी लड़कीका तेज! सुन लीं न सब बातें! कहती है, मानी-हुई मौसी!—कुलीन घरकी लड़की ठहरी, नहीं तो अब तक ब्याह हो गया होता और पाँच-छै बच्चोंकी मा हो जाती। मानी-हुई मौसी,—सुन लिया न!

जगद्धात्री चुप बनी रही और रासमणि स्वयं भी जरा स्थिर हो ली, फिर सहसा बोल उठी—हाँ, जग्गो, मैंने सुना कि अमरित चकरवरतीके लड़केको तू अब भी घरमें घुसने देती है? क्या यह सच है?

जगद्धात्री मन ही मन अत्यन्त शंकित हो उठी।

रासमणि कहने लगी—मैं उस दिन पुलिनकी अम्मासे लड़ ही बैठी। मैंने कहा कि वह जगद्धात्री है और कोई नहीं। हरिहर बनरजीकी नातिनी और रामतनु बनरजीकी लड़की,—जो सूद्दर होनेके कारण कायथोंके घर पैर तक नहीं धोते थे। भला उनके घर कहीं वह मलेच्छ लड़का घुस सकता है! तुम लोग कह क्या रही हो!

इस हितैषिणीकी सहानुभूतिके आगे लज्जित होकर जगद्धात्री जरा सूखी हँसी हँसकर बोली—बात तो तुमने ठीक ही कही है मौसी! पर, तुम तो जानती ही हो कि बचपनसे ही उसका हमारे यहाँ आना-जाना रहा है, मुझे चाची चाची कहा करता है, इसीसे कभी छठे-छमासे अगर आ जाता है तो मेरे मुँहसे नहीं नहीं निकलती कि तू मेरे घर न आया कर। बेचारेके मा-बाप कोई नहीं है, देखनेसे दया आ जाती है।

रासमणि पहले तो सुनकर दंग-सी रह गई, फिर क्रोधके स्वरमें बोली—ऐसी दयाके मुँहपर तू आग न लगा दे!

अकस्मात् उसका क्रोध बहुत ऊँचा चढ़ गया था, उसके साथ स्वरका सामंजस्य रखते हुए वह फिर कहने लगी—उस मनघुन्ने लड़केको तू क्या मामूली बदमाश समझती है? ऐसा पाजी लड़का गाँवमें ढूँढ़े न मिलेगा, तुझे बताये देती हूँ। चटरजी भइया ज़मींदार आदमी ठहरे,—उन्होंने खुद छोकरेको बुलवाकर

कहा था कि अरुन, वज़ीफेके लोभको गंगाजीमें बहा दो और घरके लड़केकी तरह घर बैठो। विलायत मत जाओ। पर, उनकी बात क्या सुनी उसने ? उलटा विलायत जाते बखत उनका मज़ाक़ उड़ा गया। बोला, यदि विलायत जानेसे जात जाती है, तो जाय, मेरे लिए वही अच्छा। परन्तु, गोलोक चटरजीके समान भेड़-बकरियाँ विलायत भेजकर पैसा पैदा करना मेरा काम नहीं; और न समाजके सिरपर सवार होकर लोगोंकी जात मारना ही मेरा पेशा है। उफ्; मैं अगर उस बखत होती तो मारे झाड़ूके छोकरेका मुँह सीधा कर देती। जो गोलोक चटरजी भात खाकर गोबरसे मुँह-हाथ धोते हैं, उनको जो है सो—

जगद्धात्रीने विनीत कंठसे कहना चाहा—पर अरुन तो कभी किसीकी निन्दा नहीं करता मौसी ?

"तो क्या मैं झूठ बोल रही हूँ ? और क्या चटरजी भइया—"

"नहीं नहीं, वे क्यों झूठ बोलने लगे। पर लोग भी तो बहुत-सी बातें बढ़ा चढ़ाकर कह आते हैं।"

"तेरी तो बस एक ही बात है जग्गो! लोगोंको खा-पीकर कुछ काम थोड़े ही है जो गये होंगे बातें बढ़ा चढ़ाकर कहने;—अच्छा, वह बिलायत जाकर ही कौन-सी दिगबिजै कर लाया बता ? सीख आया किसानोंकी विद्या। सुनकर हँसी आती है। चकरवरती हो और चाहे जो हो, है तो बाम्हनका ही लड़का! देशमें क्या किसान थे नहीं ? अब कोई पूछे उससे, क्या तू हल जोतने जायगा खेतोंमें ? राम राम, उसे मौत भी न आई !"

रासमणिके कंठस्वरका तीव्र सौरभ क्रमशः दूर तक व्याप्त होनेकी तैयारी कर रहा था, गन्ध पाकर कहीं मुहल्लेकी समझदार मधुमक्खियोंका झुंड न आ पहुँचे, इस डरसे जगद्धात्रीने कहा—खड़ी खड़ी क्यों बतला रही हो मौसी, चलो जरा, भीतर चलकर बैठो न।

"नहीं नहीं, बहुत अबेर हो गई है, अब बैठूगी नहीं। बिटियाको भी नहलाना है। दूलेकी छोकड़िया भाग गई न ?"

"हाँ दादी, तुम जब बातें कर रहीं थीं, तभी चली गई। पर उसने मुझे छुआ नहीं—"

"फिर 'नहीं' कह रही है हरामज़ादी। पर जग्गो, तुझसे बिनती करती हूँ बेटी, मुहल्लेमें दूले-बाग्दी मत बसा। जमाईसे भी कहना।"

" कहूँगी क्यों नहीं मौसी, मैं कल ही इन लोगोंको निकाल बाहर करूँगी। और, रहेंगे तो अपने ही लिए दिक्कत है, तालाब-घाट बिगाड़ेंगे, उनके डाले हुए पानीके ऊपरसे अपनहीको तो चलना-फिरना पड़ेगा। "

" तू ही बता बेटी, फिर हम लोगोंका जात-जनम बना रहेगा ? मैं तो यही बात कह रही थी, पर आजकलके लड़के-लड़कियाँ कुछ मानना थोड़े ही चाहते हैं। इसीसे तो चटरजी भइया उस दिन सुनकर दंग रह गये, बोले, रासू अपनी जगद्धात्रीकी लड़कीको, सुना है कि, उसका बाप पढ़ा-लिखा रहा है ? ये लोग कर क्या रहे हैं ! मना कर दे,—मना कर दे,—लड़कीकी जात पढ़-लिखकर एकदम मिट्टीमें मिल जायगी। "

जगद्धात्रीके डरकी सीमा न रही; बोली,—" चटरजी मामा कह रहे होंगे ? "

" कहेंगे नहीं ? वे ठहरे समाजके सिर, गाँवके एक जमीनदार। उनके कानों तक कौन-सी बात नहीं पहुँचती, बता ? अरे मुझे ही ले न,—बूढ़ी तो हो चली—लिखने-पढ़नेकी कोई बला ही नहीं जानती, पर कौन-सा सास्तर मैं नहीं जानती बता ? किसके बापकी मजाल है जो कह दे कि रासी-बाम्हनीने कोई असास्तरी काम किया है ! लल्लीके बकरीकी रस्सी लाँघते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये, उस बखत मैंने कहा, ' अरी छुकड़िया तूने किया क्या यह, मंगलके दिन लाँघ गई !' कोई कहे तो देखूँ, कौन-सा पंडित कहता है कि नहीं, इसमें दोस नहीं। सो नहीं हो सकता बेटी,—सो हो ही नहीं सकता। हम लोगोंने बाप-महतारीसे सिच्छा पाई है। मगर, बुला तो जरा अपनी पढ़ी-लिखी लड़कीको, देखूँ, कैसे बताती है ये सब बातें ! "

जगद्धात्रीने चुपचाप उसकी बात मान ली, बोली—जरा बैठकर जातीं न मौसी !

" नहीं बेटी, अबेर हो गई है, और किसी दिन आऊँगी। चल खेंदी, घर चल। "

इतना कहकर नातिनीको आगे लेकर कुछ ही कदम चली होगी कि फिर लौट पड़ी, बोली—क्यों जग्गो, ऐसा अच्छा पात्र हाथसे क्यों निकल जाने दिया, बता, तो सही ?

" नहीं तो, हाथसे तो नहीं निकलने दिया, पर एक बात है, घर-द्वार कुछ नहीं है, उमर भी .ज्यादा है,—तुम्हारे जमाईके बराबर होगा, क्यों मौसी ? "

रासमणि आश्चर्यसे चकित होकर खड़ी हो गई, बोली—सुनो इसकी बातें !

मै पूछती हूँ, उसके घर नहीं है, पर तेरे तो है! तेरे कोई लड़का तो है ही नहीं, और लड़की भी दूसरी नहीं, जिसके लिए चिन्ता हो। एक लड़की है, इसी लड़की और जमाईको लेकर घर चलाती, यह क्या कम आनन्दकी बात होती बेटी! और उमर? कुलीन-घरानेके लड़केकी चालीस-बयालीसकी उमर क्या कोई उमरमें उमर है! वह रसिकपुरके जयराम मुखरजीका दोहता है दोहता! उसकी उमर कौन देखता है जग्गो! इसके सिवा अपनी लड़कीकी उमरकी तरफ भी तो देख जरा! और भी गरियारी करेगी, तो फिर ब्याहेगी कब? अन्तमें क्या अपनी छोटी बुआकी तरह जिन्दगीभर कुआँरी ही रख छोड़ेगी?

जगद्धात्रीने शरमाते हुए कहा—मैं भी यही कहती हूँ मौसी, पर लड़कीके बाप तो बिलकुल ही—

रासमणिको इतना भी धीरज न रहा कि उसकी बात भी पूरी हो जाने देती। जल-भुनकर कह उठी—लड़कीका बाप क्यों न कहेगा भला! उसके खुदके कितने घर-द्वार और कितनी जमीनदारी थी! बात सुनके हँसी आती है। इसके सिवा, अरुनकी बैठकमें दिन-रात बैठना-उठना, गाना-बजाना, सुनती हूँ हुक्का तक चल रहा है,—सो ऐसी बात वह न कहेगा तो क्या चटरजी-भइया कहेंगे? हद कर दी तूने जग्गो! पर एक बात कहे देती हूँ, बेटी, घर-वर जब मिल गया है तब ना-ना करके देर करेगी तो अन्तमें फिर वही कोरिया-वाला किस्सा होगा,—अतिका लोभी ठगाया जाता है। तेरी छोटी बुआ गुलाबी बूढ़ी क्वाँरी रहकर मरी, तेरे बापकी बड़ी और मझली दोनों बुआओंका भी ब्याह नहीं हुआ। और तेरा ही क्या समयपर ब्याह हो जाता बेटी, अगर तेरे बाप-मा काशीजी जाकर न रहने लगते? समधिन काशी-वास कर रही थीं, आगे-पीछे कोई झंझट था नहीं, जमाई इस्कूलमें पढ़ता था,—घर-वर ज्यों ही मिला, चटसे तुम दोनोंके पीले हाथ कर दिये और लड़की-जमाई लेकर गाँवके गाँव लौट आये। कोई भाँजी न मार दे, इस डरसे किसीको खबर तक नहीं दी! सो अच्छा ही किया था, नहीं तो ब्याह होता कि नहीं, कौन जानता है!—चल खेंदी, चल।—जयराम मुखरजीका नाती,—वह भी काला और धौला! दिनपर दिन और न जाने कितनी अनोखी बातें सुननी पड़ेंगी!—ले चल बिटिया, अब और देर मत कर। कपड़े-अपड़े धोते करते, दिआ-बत्ती जलाके माला जपते-जपते आज, देखती हूँ, पहर रात बीत जायगी। मगर एक बात मैं जरूर कहूँगी जग्गो, खिस्तान-फिस्तानको घरमें घुसने

देना, लड़कीके साथ हँसी-मस्करी करने देना, अच्छा नहीं। बात फैल जानेसे लड़का मिलना मुश्किल हो जायगा बेटी,—खेंदी चलती क्यों नहीं, चल न।—पराई बात कोई छिड़नी-भर चाहिए, फिर तो हिलना ही नहीं चाहती!

बड़बड़ाती हुई रासमणि नातिनीको आगे किये वहाँसे प्रस्थान कर रही थी, और जगद्धात्री शंकित और सूखे मुँहसे उसकी तरफ खड़ी देख रही थी; इतनेमें सहसा चौंककर जगद्धात्रीने कहा—ओ बिटिया खेंदी, जरा खड़ी रहना, खेतसे कल टोकनी-भर नये मारू बैंगन आये हैं, और एक कची लौकी आई है, उनमेंसे कुछ लेती जा तो बिटिया—मैं चटसे लिये आती हूँ,—

इतना कहकर जगद्धात्री जल्दीसे भीतर जाने लगी, रासमणि पुलकित विस्मयके साथ बोल उठी—अच्छा! बैंगन अभीसे लगने लगे?

कहकर आवाज़को ज़रा धीमी करके नातिनीसे बोली—अरी खेंदी, मुँहजली, ठूँठकी तरह खड़ी है, साथ जाती क्यों नहीं!

और दूसरे ही क्षण उसे पीछेसे पुकारकर कह दिया—दौड़ी आना,—मैं तब तक आगे बढ़ती हूँ।

* * * *

२

संध्या सामनेके दालानमें बैठी एकाग्र चित्तसे कुछ सीं रही थी, जगद्धात्री पाठ-जप करके ठाकुरजीके घरसे बाहर आ रही थी, कुछ देर तक लड़कीकी ओर एकटक देखकर उसने कहा—सबेरेसे इतना क्या सीं रही है संध्या? दोपहर दिन चढ़ गया,—नहायेगी-खायेगी नहीं? परसों ही तो पथ्य लिया है, पित्त चढ़नेसे फिर बीमार पड़ जायगी, कहे देती हूँ।

संध्याने बढ़ती सूतको दाँतसे कुतरते हुए कहा—बाबूजी तो अभी तक आये नहीं, मा।

"सो मालूम है। बिना-पैसेका इलाज करते-कराते उन्हें कितना दिन चढ़ जायगा, सो कौन जानता है? खैर, मैं तो हूँ, तुझे उपासे रहनेकी क्या जरूरत है?"

संध्या चुपचाप काम करने लगी, कुछ जवाब नहीं दिया।

माने पूछा—क्या, सीं क्या रही है, सुनूँ तो सही?

लड़कीने बिना इच्छाके अस्पष्ट स्वरमें जवाब दिया—दो बटन टाँके देती हूँ।

"सो तो जानती हूँ बेटी, जानती हूँ। और नहीं, क्या मैं अपनी धोतीके लिए थोड़े ही पूछ रही हूँ कि सींई कि नहीं। किन्तु, कैसी बाप-सुहागिन बनी है तू, मानो दुनियामें और किसीके बाप ही न हों। कहाँ किस कुड़नेम बटन नहीं है, कहाँ कौन-सी धोतीके छोरमें खोंता लग गया है, किस कमीज़में जरा-सा दाग लग गया है, जूतेकी कहाँ जरा-सी सिलाई खुल गई है,—इसी काममें तो दिन-रात जुटी रहती है, इसके सिवा संसारमें और कोई काम करनेको नहीं है तुझे?

संध्याने मुँह उठाकर जरा मुसकराते हुए कहा—बाबूजीकी तो इन सब बातों-पर निगाह ही नहीं पड़ती मा।

जवाब सुनकर मा खुश न हुई, बोली—पड़ेगी कैसे? बिना-पैसेकी डॉक्टरीसे फ़ुरसत मिले तब न! मैं पूछती हूँ, दूलेकी लुगाई और लड़की गई?

"जायगीं क्यों नहीं मा।"

"आखिर कब? छू-छाकर जात-जनम बिगड़ जायगा, तब? फिर सुई पिरो रही है? उठेगी नहीं क्या?"

"तुम जाओ न मा, मैं अभी आती हूँ।"

"इस बीमारीकी देहमें तुझे जो दिखाय सो कर बेटी,—तुम दोनोंसे बकते-झकते मेरा माथा गरम हो जाता है। इस घर-गिरस्तीकी अब मुझे ज़रूरत नहीं है,—अब मैं सासके पास जाकर काशी-वास करूँगी,—सो तुम लोगोंसे साफ़ साफ़ कहे देती हूँ।"

इतना कहकर गुस्सेमें भरी जगद्धात्री पीतलका कलसा लेकर पीछेके तालाबकी ओर जल्दीसे चली गई।

संध्या नीचेको निगाह किये हुए ही जरा मुसकराकर रह गई, माकी बातका उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी सिलाई लगभग खतम हो चुकी थी, सुई-डोरा आदि फिलहाल एक छोटेसे साबुनके बाक्समें रखकर उठना ही चाहती थी, कि इतनेमें पिताके शोर-गुलसे चौंककर उसने मुँह उठाया। वे हमेशा व्यस्त रहते हैं, उन्होंने तुरंत ही घरमें पैर रखा है, हाथमें एक होमियोपैथी दवाओंका छोटा-सा बाक्स और बगलमें कई डाक्टरी किताबें दबी हुई हैं। लड़कीको देखते ही वे कह उठे—संध्या, उठ तो बेटी, चटसे मेरा दवाका बड़ा बाक्स जरा,—क्या करूँ क्या नहीं, कुछ समझमें ही नहीं आता,—ऐसी मुसीबतमें जान—

संध्याने झटपट उठकर पिताके हाथसे बाक्स और किताबें लेकर एक तरफ रख दीं; बरामदेमें इससे पहले जो चटाई बिछा रखी थी, हाथ पकड़कर पिताको उसपर बिठा दिया और पंखासे हवा करते करते कहा, “ आज तुम्हें इतनी देर क्यों हो गई बाबूजी ? ”

“ देर ! मुझे क्या नहाने-खानेकी फुरसत है, तुम लोग समझती हो ? जिस रोगीके पास न जाऊँ, वही रूठ जाता है । प्रिय मुकर्जीके हाथकी एक बूँद दवा बिना लिये जैसे कोई बचेगा ही नहीं ! डर बिल्कुल झूठा ही हो, सो भी तो नहीं कह सकता, पर प्रिय मुखर्जी तो एक ही है,—दो चार तो हैं नहीं ! उनसे कहता हूँ,—नन्द मित्तिर आखिर प्रेक्टिस तो कुछ न कुछ कर ही रहा है,—दो-चार दवा न जानता हो, सो भी नहीं—मगर सो नहीं होनेका, मुकर्जीके बिना काम ही नहीं चलेगा ! और उनसे भी क्या कहूँ ! एक दवाका भी सिम्‌टम तो कोई याद नहीं रखता ! अरे, इतनी सहज विद्या नहीं है,—इतनी सहज नहीं है ! तब तो फिर सभी लोग डाक्टर हो जाते ! सभी प्रिय मुकर्जी हो जाते ! ”

“ बाबूजी, कोट-कमीज उतार डालो न—”

“ उतारता हूँ, बेटी । यही आजहीकी बात सुन ले—दत्तसे पट्ठेने पॅल्सेटिला दे डाला ! प्रैक्टिस तो करता है मगर बतावे जरा उसका ऐक्शन (शरीरपर असर) क्या होगा ? देखूँ, मेरी तरह कंठस्थ कह तो जाय सब, कैसे कहता है ! संध्या, खोल तो बेटी, किताब जरा, पॅल्सेटिला ×—”

“ किताबका क्या करोगे बाबूजी ! आज खाने-पीनेके बाद उसी दवाके बारेमें तुमसे पढ़ लूँगी । पढ़ा दोगे, बाबूजी ? ”

“ पढ़ा क्यों नहीं दूँगा । जरूर पढ़ा दूँगा । नॅक्सवोमिकाके साथ फर्क असलमें, —उस किताबको जरा उठा तो ला—”

“ तब तक तुम्हारे तेल लगा दूँ न बाबूजी । बड़ी अबेर हो गई है,—मा आकर गुस्सा होंगी फिर । ” कहते हुए संध्याने एक बार उद्विग्न दृष्टिसे देख लिया कि उसकी मा नहाकर लौट रही है या नहीं; और मना करनेसे पहले ही वह प्यालीमें थोड़ा-सा तेल लाकर पिताके पैरोंमें मलने लगी ।

“ अरे,—ज़रा ठहर क्यों नहीं गई बिटिया । जरा देख लेता—”

“ आज किस किसको देखा बाबूजी ? अच्छा, पंचा मल्लाहके बाबाको—”

× होमियोपैथीकी एक औषध ।

" वह बूढ़ा ? वह मरेगा, जरूर मरेगा, तू देख लेना, संध्या। और वह परान चटर्जी,—उस हरामजादेपर मैं केस करूँगा तब छोड़ूँगा। जिस रोगीको मैं देख आता हूँ, उसीको जाकर बहका आता है। एक दिनसे ज्यादा कोई मेरी दवा खाना ही नहीं चाहता, सो क्यों ?—सिर्फ उस नालायक पाजी गधे लुच्चेकी बजहसे ! क्या किया है उसने, जानती है ? पंचाके बाबाको ज्यों ही मैं एक रेमेडी सिलेक्ट (औषध चुनकर) करके दे आया, त्यों ही चटसे पीछे पीछे पहुँचा और बोला, क्या है देखूँ, क्या दिया है ?—"

संध्याने क्रोधके स्वरमें कहा—फिर ?

पिताने उससे भी अधिक क्रोधके साथ कहा—साला बदमाश, गटगट करके सारी शीशी पी गया और बोला, 'खाक दवा है ! लो मैं सब पी गया। भला, मेरी दवा तो वह पी जाय, कैसे पीता है देखूँ !' यह कहकर एक शीशी कैष्टर ऑइल (एरंडीका तेल) की दे आया। वे कहने लगे, महाराज, आपकी दवा तो वे एक ही घूँटमें पी गये, उनकी दवा आप पी सकें तो हम आपकी दवा पीयेंगे, नहीं तो नहीं। *

संध्याने डरसे व्याकुल होकर कहा—उसे तुमने पीया तो नहीं बाबूजी ?

" नहीं,—सो क्यों पीने लगा ! मगर इतनी अबेर तक घर-घर घूमता रहा, एक भी रोगी न जुटा सका ! परानके नाम मैं जरूर केस करूँगा, तुझसे कहे देता हूँ संध्या ! "

क्षोभ और अभिमानसे संध्याकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। अपने इस निरीह पिताको दुनियाके सब तरहके आघातों, उपद्रवों और उपहास-परिहासोंसे बचानेके लिए मानो वह अपने दस हाथोंको बढ़ाकर ओटमें कर लेना चाहती है। सजल-कंठसे बोली—बाबूजी, तुम दूसरोंके लिए ऐसे घाममें क्यों घूमा करते हो ? घरसे ही न जाने कितने लोग तुम्हारी दवाके लिए आ-आकर लौट गये।

इस बातमें सत्यका कुछ अपलाप था। गाँवके गरीब दुखी लोग दवा लेने आते जरूर हैं, पर वे संध्याके पास आते हैं, उसके पिताके पास नहीं। पितासे ही संध्याने छोटी-मोटी बीमारियोंका इलाज करना सीखा है, और उसकी दी हुई दवा प्रायः निष्फल नहीं जाती। परंतु, गुरुसे लोग यमकी तरह डरते हैं। इसीसे

---

* होमियोपैथी दवा कितनी ही अधिक या कम मात्रामें क्यो नहीं खाई पीई जाय एक-सा असर करती है और यदि लाभ न पहुँचाया तो नुकसान भी नहीं पहुँचता।

वे सावधानीसे इस बातका पता लगाकर कि मुकर्जी डाक्टर घरपर नहीं हैं, घरपर दवाके लिए पहुँचते हैं। संध्या भी इस बातको जानती है; परन्तु, बाबूजीके लिए झूठ बोलनमें उसे हिचक नहीं है।

परन्तु, पिता एकबारगी चंचल हो उठे, कहने लगे—लौट गये ? कौन कौन ? कौन कौन आये थे ? कितनी देर हुई ? किस रास्ते गये हैं ? नाम-वाम सब पूछ-पाछ लिया है न ?

संध्या मन ही मन अत्यन्त लज्जित होकर बोली—नाम-वाम पूछनेकी मुझे क्या ज़रूरत बाबूजी, वे आप ही आयेंगे फिर।

"ओः, तुम लोगोंके मारे तो परेशान हो गया मैं ! नाम पूछ लेनेमें क्या जाता था ? अभी ही चटसे घूम आ सकता था। देर होनेसे बीमारी बिगड़ भी तो सकती है,—कुछ कहा नहीं जा सकता,—अभी एक ही बूँदमें अच्छा कर देता।"

संध्या चुपचाप तेल मलने लगी, कुछ बोली नहीं।

पिताने फिर पूछा—कब आयेंगे, कुछ कह गये हैं ?

"शामको शायद—"

"शायद ! देखो, कैसी गल्ती हो गई ! मान लो, अगर किसी कारण न आ सके तो ? और क्यों री संध्या, वे विपिनके हाथ तो नहीं पड़ गये ? परान हराम-जादा तो इसी टोहमें रहता है, उसे तो खबर नहीं लग गई ? नहीं भइया, अब मुझसे यह नहीं सहा जाता। घरमें क्या मुट्ठीभर चने-चूड़े भी न थे ? जरा जरा देकर घंटे-भर बैठा न रख सकी ? जिस बातको बता न दूँगा, जिसे न देखूँगा,—कौन ? कौन है ? कौन झाँक रहा है भई ? चले आओ न भीतर। अरे, राममय हो ! लँगड़ा क्यों रहे हो ?

उनके सादर आह्वान और कल-कंठको सुनकर एक किसान-सा अधेड़ उमरका आदमी आँगनमें आकर खड़ा हो गया और बिलकुल निस्पृह स्वरसे बोला—जी नहीं, यह कुछ नहीं—

"कुछ नहीं ? अजीब बात है ! साफ लँगड़ा रहे हो, और कहते हो कुछ नहीं।—अः—तेल मलना तो जरा बंद कर दे संध्या !—कुछ नहीं ! साफ आरनिकाका केस देख रहा हूँ,—नहीं नहीं, मज़ाक नहीं राममय, कहाँ, देखूँ तो जरा पैर ?"

पैर दिखानेके प्रस्तावपर राममयने एक बार करुण दृष्टिसे संध्याके मुँहकी ओर

देखकर कहा—जी हाँ, पाँवमें जरा मोच आ जानेसे कल गिर गया था।

प्रिय बाबू अपनी लड़कीकी तरफ देखकर जरा हँसकर बोले—देख लिया न संध्या, देखते ही मैंने कह दिया था न कि आरनिका है। हम लोग देखते ही समझ जाते हैं। हूँ, गिर कैसे?

"जी, कहा न मैंने, पाँवमें मोच आ गई थी। दरवाजेके पास ही एक पानीका पनाला है, उसके ऊपरका तख्ता लड़कोंने न जाने कहाँ गायब कर दिया, अनमना-सा मैं—"

"अनमना? ऐगनिस-एपिस!–संध्या, बेटी, याद रखना, स्वभाव ही असली चीज़ है। महात्मा हेरिंगने कहा है,—हूँ अन्यमनस्क होकर—फिर?"

"ज्यों ही पाँव रखा कि मुड़कर गिर—"

"ठहरो, ठहरो। अभी तो तुम कह रहे थे, मोच आ गई थी। मोच आना और मुड़ जाना दोनों एक नहीं है राममय!"

"जी, नहीं। सो तो पाँवमें मोच आनेसे ही गिर पड़ा था।"

"हूँ,—अन्यमनस्क! याद नहीं रहती! तुरंत कहते हो, तुरंत भूल जाते हो। ऐगनिस—एपिस! हूँ,—फिर क्या हुआ?"

"फिर और क्या होता महाराजजी, कलसे मारे दर्दके जमीनपर पैर नहीं रखा जाता।"

यह कहकर उसने उत्सुक दृष्टिसे एक बार संध्याके मुँहकी ओर देखकर एक गहरी साँस ले ली।

संध्याने जल्दीसे कहा—बाबूजी, अबेर हुई जा रही है, जरा-सी आरनिका—

"ऊँह—ठहर जा संध्या। केसको जरा स्टडी तो कर लेने दे। सिमिलिया सिमिलिबॉस! रेमिडी सिलेक्ट करना कोई लड़कोंका खेल थोड़ा ही है! बदनाम हो जाऊँगा! हूँ, उसके बाद? दर्द कैसा होता है, बताओ राममय?"

"जी, बड़े ज़ोरका दर्द है महाराजजी!"

"अह-ह, सो नहीं पूछता! किस ढँगका दर्द है? कोई चीज़ घिसने-जैसा या मलने-जैसा? सुई चुभने-जैसा या बिच्छू डसने-जैसा! कुनकुन करता है या झनझना रहा है?"

"जी हाँ, महाराजजी, ठीक ऐसा ही।"

"तो झन-झन करता है! ठीक है। उसके बाद?"

" उसके बाद और क्या होगा महाराजजी, कलसे दर्दके मारे मरा जाता हूँ।—"

" ठहरो, ठहरो! क्या कहा? मर जाते हो?"

राममय अधीर हो उठा था, बोला—और नहीं तो क्या डाक्टर साहब! लँगड़ाकर चलता हूँ, पाँव धरा नहीं जाता,—यह मरना नहीं तो और क्या है! इसके सिवा लड़के ऐसे बदमाश है कि बात नहीं सुनते, मना करनेपर मानते नहीं,—उस तख्तेसे ही उनका खेल होता है। फिर किसी दिन अँधेरे-उजियारेमें गिर मरूँगा मालूम होता है। जो हो, कोई दवा दीजिए, बहुत अबेर हुई जा रही है।"

" बापूजी, आरनिका दो बूंद—"

प्रिय बाबू लड़कीकी तरफ देखकर जरा हँसे, बोले—नहीं बेटी, नहीं। यह आरनिकाका केस नहीं है। बिपिन होता तो यही दे देता! चार बूँद एकोनाइट। तीन शक्ति! दो-दो घंटे बाद पीना।"

संध्याने दोनों आँखे फाड़कर कहा—एकोनाइट बाबूजी?

" हाँ बेटी, हाँ। मरनेका डर है मरनेका! 'गिर मरूँगा।' सिमिलिया सिमिलिबॉस क्युरेन्टर! महात्मा हेरिंगने कहा है, रोगका नहीं रोगीका इलाज करना चाहिए। मृत्यु-भयमें एकोनाईट मुख्य दवा है। बिपिन होता,—हूँ,—फिर भी, फिर भी हरामज़ादा इलाज करने आता है! राममय, शीशी लेकर जाओ मेरी लड़कीके साथ। दो-दो घंटे बाद चार बार पीना। उस छाक जाकर देख आऊँगा। हाँ, सुनो, परान आकर अगर कहे कि लाओ देखें, क्या दिया? तो खबरदार, शीशी मत निकालना, कहे देता हूँ। हरामज़ादा गट-गट सब पी जायगा और फिर कैष्टर-ऑइल रख जायगा! उह,—पेटमें मरोड़ा-सा हो रहा है।"

राममयको दवा देनेके लिए संध्या खड़ी हो गई थी, भय-व्याकुल कंठसे पूछ उठी,—कैष्टर ऑइल सबका सब तो नहीं पी आये, बाबूजी?

" नहीं तो,—उह,—लोटा दे कहाँ है?"

" तो मालूम होता है तुमने—"

" नहीं—नहीं—नहीं—दे न जल्दी लोटा! इस जले घरमें कोई भी चीज़ तो नहीं मिलती वक्तपर! तो रहने दे लोटा—" कहते कहते ही प्रिय बाबू बड़ी तेजीसे पिछवाड़ेके दरवाज़ेसे बाहर चले गये।

राममयने कहा—जीजी-देवी दवा दे देतीं—

संध्या चौंक पड़ी, बोली—दवा ? हाँ हाँ, अभी लाये देती हूँ।

"अभी जो तुमने बताई थी 'आरनी' न क्या, उसीकी दो बूँद दे दो जीजी, मुकर्जी बाबूकी दवा अभी—

संध्याने हृदयसे व्यथित होकर कहा—मैं क्या बाबूजीसे ज्यादा जानती हूँ, राममय ?

राममयने लज्जित होकर कहा—नहीं,—सो नहीं कहता,—पर मुकर्जी बाबूकी दवा बड़ी तेज़ होती है न जीजी,—मैं कमज़ोर आदमी ठहरा,—बल्कि, जाते ही, न हो तो मैं सौंतोंके माधोको बहला बुहलूकर भेज दूँगा,—कलसे उसे दस्त हो रहे हैं—बाबूजीकी दवा खाते ही वह अच्छा हो जायगा,—मुझे वही अपनी-वाली ही दवा आज दे दो, फिर देखा जायगा।

संध्याने विषाद-भरे स्वरमें कहा—अच्छा, आओ इधर।

यह कहकर वह राममयको अपने साथ बरामदेमेंसे होकर बगलवाले कमरेमें ले गई।

जगद्धात्री ठाकुरद्वारेके लिए पानीका घड़ा भरने तालाब गई थी, घरमें घुसते ही उसने भरे घड़ेको धप-से बरामदेमें रखकर क्रोध-भरे स्वरमें पुकारा—संध्या !

संध्याने कमरेके भीतरसे ही जवाब दिया—आती हूँ मा।

माने कहा—तेरे बाबूजी अभी लौटे नहीं न ? तो फिर आज ठाकुरजीकी पूजा बन्द रहेगी !

लड़कीने बाहर आकर कहा—बाबूजी तो बहुत देरके आ गये हैं, मा। तेल लगाके नहाने गये हैं।

"कहाँ, तलाबपर तो नहीं देखा ?"

वे दौड़े दौड़े कहाँ गये थे, संध्या इस बातको जानती थी। जरा देर चुप रहकर बोली—तो शायद आज नदी नहाने चले गये होंगे। बहुत देर हुई,—आते ही होंगे अब।

जगद्धात्री जरा भी शान्त न हुई, बल्कि, अधिकतर गरम गलेसे कहने लगी—इनको लेकर अब तो मुझसे नहीं रहा जाता। संध्या, या तो वे कहीं चले जायँ, या फिर मैं ही कहीं चली जाऊँ। बार बार कह दिया था कि पुजारीजी न आ सकेंगे, आज जरा सिदौसे आना। फिर भी इतनी अबेर,—ठाकुरजीके सिरपर जरा-सा पानी तक न पड़ा,—इसके सिवा कल क्या कर आये हैं, जानती है ?—

बिराट नाईको ब्याजके सब रुपये माफ करके चुकता रसीद दे आये हैं।

संध्याने आशंकासे परिपूर्ण होकर कहा—किसने कहा, मा?

"क्यों, खुद बिराटकी ही बहन कह गई है। भौजाईको लेकर तलाबपर नहाने आई थी।"

संध्याने ज़रा हँसनेकी कोशिश की—भाई-बहनमें झगड़ा चल रहा है मा, शायद झूठे ही कह दिया होगा।

माने नाराज होकर कहा—क्यों तू सब बातें ढकनेकी कोशिश करती है संध्या बता तो? बुखारका नाम लेकर बिराट नाई बुला ले गया यहाँसे, वहाँ जाकर दवा दी, धन्वन्तरी कहकर पैरोंकी धूल ली, जमींदार कहकर,—गौरीसेनके बराबर बताकर,—फुलाकर, कुप्पा कर दिया,—वे कहते जाते और हँसते-हँसते लोटपोट होते जाते! बस, फिर क्या देखना था! रुपये जाने दिये,—पर मनमें तो ऐसी आई कि अब घर न लौटूं,—इस गागरको ही गलेसे बाँधकर डूब मरूँ तलाबमें। आजकल तो बहुत ही ज्यादती करने लगे हैं संध्या, मैं घर-गिरस्ती कैसे चलाऊँ तू ही बता?

"कितने रुपये थे मा?"

"कितने? दस-बारहसे कम न होंगे, मैं कहती हूँ न। मुट्ठीभर रुपये जो हैं वो यों ही—"

बात उसकी खतम भी न हो पाई कि इतनेमें प्रिय बाबू भीगी धोती पहने आ पहुँचे और कामकी जल्दी दिखलाते हुए चिल्लाकर कहने लगे—संध्या, अँगौछा—अँगौछा—अँगोछा दे,—जल्दीसे दे बिटिया। एकोनाइट तीस शक्ति,—बाक्सके एकदम कोनेकी तरफ—"

जगद्धात्री आगकी तरह भक-से जल उठी, बोली—मैं निकालती हूँ एकोनाइट तुम्हारी, ठहरो! ससुरके अन्नपर ज़मींदार बननेमें शरम नहीं आती तुम्हें? किसने कहा तुमसे बिराट नाईको सूद छोड़ देनेके लिए? किसकी जगहपर तुमने दूले-डोम लाकर बसाये हैं? किसकी ज़मीन तुम गोचर करके दान कर आते हो? हमेशासे तुमने मेरा हाड़-माँस जलाया है और जलाओगे! आज या तो मैं चली जाती हूँ कहीं, नहीं तो, तुम मेरे घरसे निकल जाओ!

संध्याने तीव्र-कंठसे कहा—मा, दोपहरको यह सब तुमने क्या शुरू कर दिया, बताओ तो!

माने उसी तरह जवाब दिया—इसमें अब दुपहर और सबेरा क्या है ! कौन है वो ? ठाकुरजीकी पूजा करके चूल्हेकी खाक-धूल जो मिले सो निगलकर चले जायँ यहाँसे। मैंने बहुत सहा है, अब नहीं सहा जाता, नहीं सह सकती मैं,—नहीं सह सकती !

कहते कहते ही वह अकस्मात् रो पड़ी और जल्दीसे अपने कमरेमें चली गई।

प्रिय बाबूने, 'हूँः'—कहकर, एक गहरी उसास ली, और फिर कहना शुरू किया—मैंने बहुत कहा, जमींदार हूँ तो क्या इतने रुपये सूदके छोड़े जा सकते हैं बिराट ? तुम लोग क्या कह रहे हो ? मगर वहाँ कौन किसकी सुनता है ? और उनको भी क्या दोष दूँ ! दवा पीनेको है तो पथ्यका ठिकाना नहीं ! नेट्राम दो-सौ पावर एक बूँद देकर—

संध्याकी दोनों आँखोंमें आँसू छलक रहे थे, उसने चुपकेसे उन्हें पोंछकर कहा—बाबूजी, तुम माको बिना जतलाये इन सब झंझटोंमें क्यों पड़ा करते हो ?

"मैं तो कहता हूँ, नहीं पड़ूँगा—पर यह भी तो देखता हूँ कि प्रियनाथके बगैर गाँवमें कोई काम होता ही नहीं ! किसको कहाँ बीमारी हुई, किसको कहाँ—"

बात पूरी भी न होने दी कि संध्या चली गई, और उसी वक्त सूखी धोती और अँगौछा लाकर पिताके हाथमें देते हुए बोली—अब और देर मत करो बाबूजी, ठाकुरजीकी पूजा कर डालो। मैं आ रही हूँ।

इतना कहकर वह अपने कमरेमें चली गई, और प्रिय बाबू भी सिर पोंछते पोंछते शायद ठाकुर-द्वारेकी तरफ चल दिये। कहते गये, "उह,—फिर पेटमें ऐंठन होने लगी ! परानके नाम—उह—"

३

उस दिन रासमणि जिन गोलोक चटर्जीकी यह तारीफ सुन कर,—कि उनके डरसे शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं, संध्याको बार-बार डरा गई थी, वही हिन्दू-कुल-चूड़ामणि प्रबल पराक्रमी महाशय अपनी बैठकमें अभी अभी आकर बैठे हैं। उनके पट्टवस्त्र और चोटीमें बँधे ताजे करवी-पुष्पको देखकर मालूम होता है कि अभी हाल ही वे प्रातःकालीन पूजा-पाठ समाप्त करके चले आ

रहे हैं। नौकर फरशीपर भरी हुई चिलम रखकर उनके हाथमें नल थमा गया है, मालिक साहब सुडौल तोंदको तकियेके सहारे रखकर अन्यमनस्क भावसे उसे पीनेकी तैयारी कर रहे हैं, इतनेमें भीतरवाला दरवाजा हिल उठा और उसके शब्दसे आँख उठाकर वे बोले—कौन ?

ओटमेंसे आवाज़ आई—मैं हूँ। बिना कुछ खाये-पीये ही चले आये बाहर, बात क्या है ? गुस्सा हो गये क्या ?

गोलोकने कहा—गुस्सा ? नहीं तो, गुस्सा और अभिमान अब किसपर करूँगा बताओ ! वे बातें तो तुम्हारी जीजीके साथ साथ ही चली गईं।

इतना कहकर एक गहरी उसास ले ली, और फिर कहा, "नहीं, अभी और कुछ नहीं खाऊँगा। आज गोकुल भगवानके तिरोभावका दिन है,—अब शामके बाद ही एकदम संध्या-पूजा करके जरा-सा दूध-गंगाजल मुँहमें डाल लूँगा। इसी तरह जितने दिन कट जायँ अच्छे हैं।" यह कहकर उन्होंने फिर एक गहरी साँस ली और हुक्केकी नली मुँहमें लगा ली।

जो स्त्री नेपथ्यसे बात कर रही थी, उसने दरवाजेको जरा-सा खोलकर देख लिया कि कमरेमें और कोई तो नहीं है, और फिर वह भीतर आ गई। वह विधवा है। देखनेमें बुरी नहीं है, और उमर भी शायद चौबीस-पच्चीसके भीतर ही है। महीन सफेद धोती पहने हुए है, हाथोंमें कोई अलंकार नहीं है, पर गलेमें इष्ट-कवच बँधा हुआ एक मोटा सोनेका हार है। जरा मुसकरा कर बोली, "आप तो जब देखो तब हँसी करते हैं, लोग क्या समझेंगे, बताइए तो ? इसके सिवा मुझे क्या अब लौटके घर नहीं जाना है ?" यह कहकर वह दूसरे ही क्षण जरा उदास चेहरा करके बोली, "जिनकी सेवा करने आई थी, वे तो धोखा देकर चलती बनीं; अब घर जाकर क्या बूढ़े सास-ससुरकी देख-भाल नहीं करना है ? आप ही बताइए !"

गोलोक तम्बाकू पीते हुए जरा गम्भीर होकर बोले—सो तो ठीक ही है। अपनी गिरस्ती बिगड़ जानेके डरसे नाते रिश्तेकी किसी स्त्रीको तो पकड़के रखा नहीं जा सकता। और ऐसी ही होनहार न होती तो भला घरकी लक्ष्मी ही इस उमरमें छोड़कर क्यों चली जाती ?—मधुसूदन ! मधुसूदन !—अच्छी बात है, चली जाना कोई अच्छी-सी साइत सुधवाकर। बहनकी सेवा करने आई थीं, सो सेवा तो तुमने खूब ही की। गाँवमें हमेशाके लिए एक दृष्टान्त बनी रहोगी।

ज्ञानदा मौन बनी रही। गोलोक धोतीके छोरसे आँखें पोंछकर मिनटभर-तक चुपचाप धुआँ खींचते रहे, फिर भारी गलेसे बोले— सती लक्ष्मी थी, उसके दिन निबट चुके थे, चली गई। उसके लिए मुझे दुःख नहीं है,—परन्तु, घर-गिरस्ती तो बिगड़ ही गई समझो। लड़कियाँ बड़ी हो चुकी हैं,—अपने अपने सासुरे जाकर अपना अपना घर सम्हाल रही हैं, उनके लिए कोई फिकर नहीं; मगर इस छोटे बच्चेको कौन सम्हाले? यह तो अब नष्ट हो जायगा।

ज्ञानदा आर्द्र कंठसे बोल उठी—भगवान ऐसा न करें! आप क्यों ऐसी बात मुँहसे निकालते हैं?

गोलोकने मुँह उठाकर जरा म्लान हँसी हँसकर कहा—निकाल्नी तो नहीं चाहिए, मगर सब तो आँखोंके सामने दिखाई दे रहा है।—मधूसूदन! तुम ही सत्य हो!—घर गिरस्तीमें मन नहीं है, और ज़मीनदारीका काम-काज भी विष-सा मालूम हो रहा है। जितने दिन जीऊँ, व्रत-उपवास करने और तुम्हारा नाम लेनेमें ही बीत जायँगे। इसके लिए मुझे चिन्ता नहीं है—मुट्ठी-भर एक बेर मिल जाय तो भला, न मिले तो वाह-वाह, पर उस बच्चेकी आखिर क्या हालत होगी, यही सोचते,—मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है!

ज्ञानदाकी दोनों आँखें डबडबा आईं। गोलोककी स्त्री ममेरी बहन होनेपर भी उसे अपनी सगी बहनके समान मानती और स्नेह करती थी। इसीसे कठिन रोगमें जब उसने ज्ञानदाको याद किया तो फिर उससे बिना आये न रहा गया। वही जीजी, आज महीना-भर हुआ, इस लोकको छोड़कर चली गई; और, जाते वक्त अपने दस सालके लड़केको ज्ञानदाके हाथ सौंप गई।

उसने करुण कंठसे कहा—पर, मैं तो हमेशा यहाँ रह नहीं सकती बीजाजी, लोग-बाग कहेंगे क्या, बताइए न?

गोलोकने दोनों आँखोंमें दीप्ति लाकर कहा—लोग-बाग कहेंगे तुम्हारे लिए! इस गाँवमें रहते हुए!!

इससे अधिक उनके मुँहसे कुछ नहीं निकला, और निकलनेकी ज़रूरत भी न थी।

ज्ञानदा खुद ही इस बातको जानती थी, इससे वह चुप हो रही।

गोलोक कहने लगे—जो मेरी बात कहेगा, उसे फिर और कहीं जाकर रहना होगा,—इस गाँवमें नहीं। इसके लिए मैं नहीं सोचता, सोचता हूँ सिर्फ उस

छोकरेके लिए। वह तुम्हे बहुत ही चाहती थी, इसीसे मरते समय अपनी सन्तानको तुम्हारे हाथ सौंप गई;—मेरे हाथमें क्यों नहीं सौंपा ?

ज्ञानदाने बड़ी मुश्किलसे आँसू रोकते हुआ कहा—सब कुछ समझती हूँ जीजाजी, पर मेरे बूढ़े सास-सुसर अभीतक ज़िन्दे हैं। मेरे सिवा तो उन लोगोंकी कोई गति ही नहीं।

गोलोकने उसे तुच्छ बात समझकर लापरवाहीसे जवाब दिया—नहीं, गति नहीं है! तुम भी कैसी हो! हाँ, मुकर्जी जीवित रहते तो एक बात भी थी; पर उन्हें तो तुमने आँखोंसे भी नहीं देखा। तेरह सालकी उमरमें विधवा हुई हो—

ज्ञानदाने कहा—विधवा हूँ इससे क्या जीजाजी,—सास-सुसर जब तक बने हैं, तब तक उनकी सेवा तो मुझे करनी ही होगी ?

गोलोकने कुछ देर चुप रहकर एक गहरी साँस ली और कहा—तो जाओ हम सबको बहाकर। पर, एक बात सोच देखना छोटी मालिकिन!

ज्ञानदा नाराज होकर कह उठी—फिर छोटी मालिकिन ? कहा था न आपसे, लोग मज़ाक उड़ाते हैं! क्यों, नाम लेनेमें क्या होता है ?

गोलोकने चेहरेको जरा प्रफुल्ल करते हुए कहा—उड़ाया करें मज़ाक, इससे क्या छोटी मालिकिन ? सम्बन्ध ही जो ठहरा हँसी-मज़ाकका!

ज्ञानदा सहसा हँसकर फिर तुरंत ही गम्भीर होकर बोली—नहीं, सो नहीं होगा, आप हमेशासे नाम लेते आये हैं,—सो ही लिया कीजिए।

गोलोकने कहा—अच्छा, अच्छा, सो ही होगा।

इतना कहनेके बाद देखते देखते उनका दाढ़ी-मूँछ-हीन चेहरा विषादसे भर गया, धीरेसे एक उच्छ्वसित निःश्वासको दबाते हुए वे लगभग मन ही मन कहने लगे—छातीके भीतर दिन-रात धायँ-धायँ आग जल रही है,—हाय रे! मैं हँसी करूँगा! मज़ाक करूँगा! पर, कभी कभी,—खैर जाने दो, नहीं करूँगा। किसीको असन्तुष्ट क्यों किया जाय ? जीवनमें जो कभी नहीं किया, आज क्या वही करने लग जाऊँ ? —विषय विष है! दुनियादारी ज़हर है ज़हर!—प्रभो, कब तुम्हारे श्रीचरणोंमे जरा-सा स्थान मिलेगा!—मधुसूदन!

ज्ञानदा डबडबाती हुई आँखोंसे चुपचाप देखती रही। गोलोक कहने लगे—और ऊपरसे यह जलनके ऊपर जलन, दिन-रात घटकोंका उपद्रव! वे जानते सब कुछ हैं, छिपा तो सकता नहीं,—मैं कहता हूँ, बात तुम्हारी मानता हूँ; कुलीनका

कुल कुलीनको ही बचाना चाहिए, यह भी जानता हूँ; और शोक-तापके कारण असमयमें बाल भी सफेद हो गये हैं, यह भी सच है, पर फिर दुबारा बन्धनमें बँधना क्या मुझे शोभा देगा ? तुम ही बताओ न छोटी मालिकिन !

ज्ञानदाने जरा सूखी हँसी हँसते हुए कहा—अच्छा तो है, कर डालिए न और एक ब्याह।

गोलोकने कहा—पागल हुई हो तुम, फिर ब्याह ! लक्ष्मीके समान तुम जिसके घरमें मौजूद हो,—कुछ भी कहो, अनाथ बहनोतको ऐसे ही बहाकर तुम नहीं जा सकोगी !—मरते वक्त जो उसे तुम्हारे हाथ सौंप गई है, उसकी बात तुम्हें रखनी ही पड़ेगी, मेरी बात,—कौन है ?

नौकरने दरवाज़ेसे मुँह बढ़ाकर कहा—चोंगदार साहब आये हैं।

गोलोकने मुँहको जरा विकृत करके कहा—उँह, अब मुझसे यह सब नहीं होता। काम, काम, धन-दौलत,—इधर जो मेरा सब-कुछ ज़हर हो गया है, सो किसे समझाऊँ और कौन समझे ?—मधुसूदन ! कब निस्तार करोगे !—जा न, खड़ा क्यों रह गया, लिवा ला।

नौकर चला गया, ज्ञानदाने भी उधर दरवाजेके बाहर जाकर दबी जबानसे पूछा—तो फिर इस छाक सचमुच ही कुछ न खाओगे ?

गोलोकने सिर हिलाकर कहा—नहीं। प्रभु गोकुल भगवानके तिरोभावका पर्वका दिन है। छोटी मालिकिन, हम जैसे पुराने ज़मानेके लोग अब भी इन सब बातोंको मानते हैं, इसीसे आज भी चन्द्र-सूर्य आकाशमें उदित होते हैं,—नदीमें ज्वार-भाटा होता है।—मधुसूदन ! तुम्हारी इच्छा !

ज्ञानदाने कहा—होने दो पर्व, जरा-सा दूध-गंगाजल मुँहमें डालनेमें दोष नहीं होगा। जरा जल्दी आइएगा, मैं लिये बैठी रहूँगी।

इतना कहकर उसने दरवाजा बंद कर दिया।

सामनेके दरवाजेसे नौकरके पीछे पीछे एक शरीफ आदमीने प्रवेश किया। गोलोकने उसे पास बुलाया—आओ चोंगदार, बैठो, मैं फिकरमें मर रहा था। जरा किसीसे खबर ही भिजवा देते ! भोलू, जा शूद्रके हुक्केमें पानी भरके जल्दीसे तम्बाकू भर ला।

विष्णु चोंगदारने प्रणाम करके गोलोकके पाँवोंकी धूल सिरसे लगाते हुए एक गहरी साँस ली, फिर कहा—दम मारनेकी तो फुरसत नहीं थी बड़े-बाबू, फिर भी

आप खबर भेजनेकी कहते हैं ! खैर, पाँच सौ और तीन सौ,—आठ सौ तो जहाजपर लदवा दिये। ओः,—बड़ा झंझट है।

दक्षिण आफ्रिकामें फौजकी खुराकके लिए बकरे और भेड़, चालान करनेके कारबारमें यह विष्णु चोंगदार उनका साझीदार है। तीन महीनेमें तीन हज़ार जानवर सप्लाई करनेकी शर्तपर कन्ट्राक्ट तय हुआ है। इसीसे इस खबरसे गोलोक खुश न हुए। अप्रसन्न मुखसे बोले—कुल आठ सौ ? कन्टराक तो तीन हजारका है,—अभी तो बहुत बाकी हैं, जी।

चोंगदारने क्षुब्ध होकर कहा—बकरे-भेड़ें अब मिलते थोड़े ही हैं, बड़े बाबू ! सब चालान,—सब चालान,—यही आठ सौ इकट्ठे करनेमें नाकमे दम आ गया। हाँ, हरेनने रामपुरसे चिट्ठी लिखी है, आठ-दस दिनमें वह और भी पाँच-सात सौ रेलसे रवाना कर रहा है,—सिर्फ उतारकर जहाजपर लाद देना है। और अभी समय भी तो तीन महीनेका पड़ा है,—हो ही जायगा नारायणकी इच्छासे।

गोलोकको तसल्ली हुई, बोले—तुम्हारा ही भरोसा है। मुझे तो अब एक तरहसे गृहस्थ-संन्यासी ही समझो। तुम्हारी बहूजीके मरनेके बादसे रुपया-पैसा एकदम ज़हर हो गया है। सिर्फ उस नाबालिग लड़केके लिए,—सो रुपयेमें रुपया पूरा पड़ेगा कि नहीं, कौन जाने ?

चोंगदारने गरदन हिलाकर कहा—ज़रूर, ज़रूर ! मगर रुपया पीटेगा अबकी अहमद। सात सौका कन्टराक मिला है,—और भी ज्यादेका मिल जाता, सिर्फ रुपयेकी कमीसे हिम्मत नहीं पड़ी उसकी।

गोलोकने आँखका एक इशारा करके पूछा—'बड़ों' का मिल है क्या ?

चोंगदारने कहा—हूँ, नहीं तो मैं भला छोड़ देता ?

गोलोक दाहिना हाथ मुँहके सामने रखकर कह उठे—दुर्गा दुर्गा ! राम राम ! सबेरे ही सबेरे ऐसी बात मुँहपर लानी चाहिए, चोंगदार ! जातका मलेच्छ, धर्म-अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं,—हाँ तो दसेक हजार मार देगा, क्यों ?

चोंगदारने कहा—ज्यादा ! ज्यादा !

गोलोकने कहा—लड़ाई ज्यादा दिन चल गई तो, देखता हूँ, बेटा 'लाल' हो जायगा। यही तो दिखता है।

चोंगदारने कहा—इसमें शक नहीं। मगर, बहुत रुपयोंका खेल है,—एक साथ जुटा सके, तब समझिए।

गोलोकने कहा—कन्टराक दिखाकर कर्ज लेगा,—मुश्किल क्या है?

चोंगदारने सिर हिलाते हुए कहा—सो ठीक है, पर मिले तब तो। मुझे कह रहा था कि—

खबर सुननेके लिए गोलोक उत्सुक हो उठे, पूछने लगे—क्या कह रहा था? सूद क्या देना चाहता है?

चोंगदारने कहा—चार पैसा तो ज़रूर ही देगा। शायद—

'शायद' को गोलोकने खतम नहीं होने दिया। गुस्सेमें आकर बोले—चार पैसा! आप तो रुपयेमें रुपया मारेगा, और सूदके नाम चार पैसा देगा! दस आने और छै आनेकी मंशा हो तो एक बार मिलनेको कह देना।

चोंगदारने कुछ आश्चर्यमें आकर पूछा—रुपया क्या आप ही देंगे उसे? मगर बात खुल गई तो—

क्षण-भरमें गोलोकने अपनेको सावधान कर लिया और सूखी हँसी हँसकर कहा—राधा-माधव!—तुम पागल हुए हो चोंगदार! बल्कि, हो सका तो मनाही और कर दूँगा!—और जाननेको हम और तुम ही तो हैं।—मगर, एक बात कहूँगा, रुपया तो वह कहींसे उधार लेगा ही; लेकर बापका श्राद्ध करेगा या रंडी नचायेगा, या गाय चलान करेगा, इससे महाजनको क्या?

यह कहकर चोंगदारके चेहरेकी तरफ सम्मतिके लिए क्षण-भर देखकर वे खुद ही बोले—सो बात नहीं चोंगदार, सिर्फ़ एक बातकी बात कही है कि इतनी खोज करनेसे महाजनका काम नहीं चल सकता। लेकिन, मुझे तो तुम हमेशासे देखते आये हो, ब्राह्मणका पुत्र हूँ, धर्म-मार्गपर चलकर भीख भी माँगनी पड़े, सो अच्छा; पर, अधर्मका पैसा न छूना पड़े। सिर्फ उन्हींके चरणोंमें मति स्थिर रखी है, इसीसे आज पाँच-पाँच गाँवका समाज-पति हूँ। आज मुँहकी एक बातसे ब्राम्हनको सूद्दर, और सूद्दरको बाम्हन बना दे सकता हूँ।—मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है!—तबकी बार जब जोरका बीमार पड़ा था, तब जयगोपाल डाक्टरने कहा, सोडाका पानी पीना पड़ेगा। मैंने कहा,—डाक्टर, जनमा हूँ तो मरना भी होगा, यह कोई बड़ी बात नहीं, पर इस गोलोक चटर्जीको फिर कभी ऐसी बात न सुननी पड़े! केनारामका पुत्र और हरराम चटर्जीका नाती हूँ मैं,—

जिसके एक बूँद पादोदकके लिए स्वयं भाड़ारहाँटीके राजाको भी पालकी और आदमी भेजने पड़ते थे!

चोंगदार दूसरी बार प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ, बोला—इस बातको कौन नहीं मानेगा बताइए?—यह तो दुनिया जानती है।

गोलोकने प्रत्युत्तरमें सिर्फ एक गहरी साँस लेकर कहा—मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है!

चोंगदार चलनेको तैयार हुआ तो उसे बुलाकर कहा—और सुनो, हरेनके पाससे आनेपर रेलकी रसीद जरा माँग लेना।

चोंगदारने गरदन हिलाकर कहा—जी हाँ।

गोलोकने कहा—तो आठ सौ और पाँच सौ हुए! बाकी रहे, सत्रह सौ,—तीन महीनेका समय है,—हो जायगा न, क्यों जी?

चोंगदारने कहा—जी हाँ, होगा क्यों नहीं।

गोलोकने कहा—इसीसे, तुमने तभी कहा था चोंगदार, एकदम पूरा पाँच हज़ारका कन्टराक कर डालो। तब हिम्मत नहीं की—

चोंगदारने कहा—जी, उतने बकेर-भेड़े अगर न इकट्ठे हो पाते—

गोलोकने प्रतिवाद नहीं किया, कहा—तब तो यही अच्छा, यही अच्छा। धर्म-मार्गपर एककी जगह आधा, आधेकी जगह चौथाई हो, सो भी बहुत है; लेकिन, अधर्मके रास्ते मोहरें भी कुछ नहीं, समझे न चोंगदार?—मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है।

चोंगदारने और कुछ न कहा, उसके चले जानेपर भगवद्भक्त गृहस्थ-संन्यासी चटर्जी महाशय हुक्केको उठाकर चिन्तित मुखसे तमाखू पीने लगे, उसकी तमाखू तब तक जल चुकी थी। दुनियादारी शायद उन्हें विषके समान ही मालूम होने लगी; परन्तु, इतनेमें भीतरके दरवाजेको जरा-सा खोलकर नौकरानीने मुँह बढ़ाकर कहा—मौसीजी जरा भीतर बुला रही हैं।

गोलोकने चौंककर पूछा—क्यों, बता तो सदू?

नौकरानीने कहा—थोड़ा-सा जलपान लिये बैठी हैं मौसीजी।

गोलोकने हुक्का रखकर जरा हँसते हुए कहा—तेरी मौसीजीके मारे तो नाकमें दम है, सदू। पर्वके दिन एक छाक उपास करना चाहता हूँ, सो भी उनसे नहीं सहा जाता!

यह कहते हुए वे उठ खड़े हुए और जाते जाते एक गहरी साँस छोड़ते हुए कहते गये—घर-गिरस्तीमें रहते परलोकके काममें कितने विघ्न आते हैं कोई ठीक है।—मधुसूदन हरि !

* * * *

४

संध्याकी तबीयत इधर कुछ दिनोंसे ठीक नहीं रहती। अकसर बुखार आ जाता है, और पिताके इलाजसे तो धीरे धीरे उसकी हालत और भी बिगड़ती-सी जा रही है। मा रोज विपिन डाक्टरको बुलानेकी धमकी देती, और इसी बातपर अकसर मा-बेटीमें कलह हो जाया करता। आज शामके वक्त संध्या सामनेके बरामदेमें खूँटीके सहारे बैठकर माके परोसे हुए साबू-दाने किसी तरह आँख मीचके निगल गई, और झटपट एक बीड़ा पान मुँहमें देकर उल्टी रोकनेकी कोशिश करने लगी। इस पथ्यसे उसे बड़ी घृणा थी। परंतु, फिर भी, खाने और कम खानेको लेकर बात बढ़ानेकी उसकी इच्छा न थी। कहींसे न कहींसे मा तो देख ही रही होगी, यह बात वह निश्चित जानती थी। इसके पहले शायद वह कोई किताब पढ़ रही थी,—उसकी गोदमें पुस्तकके खुले हुए पन्ने उलटे रखे थे। उसे फिरसे उठाकर ज्यों ही वह पढ़ने लगी, त्यों ही सुना कि आँगनके उस तरफसे कोई बुला रहा है—चाची, कहाँ हो ?

जो घरमें आया, वह अरुण है। उसकी धोती, कपड़े और थका हुआ चेहरा देखते ही समझमें आगया कि वह अभी हाल ही कहीं बाहरसे आ रहा है।

क्षण-भरके लिए संध्याके पांडुर मलिन मुखपर एक रक्तिम आभा दिखाई दे गई। उसने आँख उठाकर मुसकराते हुए पूछा—तुम शायद कलकत्तेसे आ रहे हो न, अरुण-भइया ?

अरुणने पास आकर आश्चर्यके साथ कहा—हाँ, मगर तुम इतनी सूखी-सी क्यों दिखाई देती हो ? फिर बुखार आ गया है क्या ?

संध्याने कहा—ऐसा ही होगा शायद। मगर तुम्हारा चेहरा भी तो खूब ताजा नहीं मालूम होता ?

अरुणने हँसकर कहा—चेहरेका इसमें क्या कुसूर है ? दिन-भर न नहाना हुआ न खाना, पैटर्नकी तुम्हारी खूब फरमायश थी, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गया। यह लो।

यह कहते हुए उसने जेबसे एक कागजका बंडल निकालकर संध्याके हाथमें दे दिया, बोला—चाची कहाँ है ? चाचा बाहर निकल गये हैं शायद ? पिछले सनीचरको किसी भी तरह घर न आ सका,—इसीसे देर हो गई। क्या बुनोगी, चिड़िया-चिरौंटा, देवी-देवता ? या गुलाब फूलकी—

संध्याने कहा—उसकी फिकरके लिए बहुत समय है। लेकिन जिसके लानेमें सात दिनकी देर हो गई, उसे देनेमें घंटे-भर भी सबर न किया गया ? स्टेशनसे घर न जाकर सीधे यहीं क्यों चले आये ?

अरुण हँसता हुआ बोला—नहाने-खानेकी कहती हो ? सो वह तो संध्याके बाद होगा। मगर इतनी जल्दी-जल्दी तबीयत क्यों खराब होने लगी है, बताओ तो ?

उसके ‘ संध्या ’ शब्दमें छिपे हुए एक निगूढ़ कटाक्षने संध्याके कर्ण-मूलोंपर आघात करके उन्हें ज़रा सुर्ख कर दिया। परंतु, मानो लक्ष्य ही न दिया हो, इस तरह गुस्सा होकर, उसने कहा—उसमें भी (सन्ध्यामें) अब बाकी क्या है अरुण भइया ? जाओ, झूठ-मूठकी देर मत करो।

उत्तरमें अरुण फिर हँसकर कुछ कहना चाहता था; परन्तु, जगद्धात्रीके मुँहकी ओर देखकर उसके मुँहकी बात मुहमें ही रह गई। वह मारे क्रोधके मुँह स्याह किये कमरेसे बाहर निकल आई और लड़कीको लक्ष्य करके बोली—अब पानको और मत चबाये जा संध्या, पहले उसे थूक दे और फिर जितना जी चाहे उतना हँसी-मज़ाक कर।

इतना कहकर वह किसीकी तरफ बिना देखे ही जल्दीसे भीतर चली गई।

अकस्मात् न जाने कैसा एक कांड-सा हो गया। अरुण चुपचाप खड़ा रह गया, जैसे उसपर बिजली पड़ गई हो। संध्या भी फक़ पड़ गई। कुछ देरके लिए संध्याकाशका सारा प्रकाश मानो बिलकुल बुझ गया। कुछ क्षण इसी तरह रहकर संध्याने मुँहका पान थूक दिया, फिर रोनी-सी होकर वह कहने लगी—अब तुम क्यों इस घरमें आते हो अरुण-भइया ? क्या तुम हम लोगोंका सर्वनाश किये बिना न छोड़ोगे ?

पहले तो अरुण एक शब्द भी न कह सका, उसके बाद धीरे-से सिर्फ इतना ही बोला—मुँहका पान थूक दिया संध्या !—मैं क्या सचमुच ही तुम्हारे लिए अस्पृश्य हूँ ?

संध्या सहसा रो पड़ी, बोली—तुम्हारी न जात है, न धर्म है,—क्यों तुमने

मुझे छू दिया ?

" मेरी जात नहीं ? धर्म नहीं ? "

" नहीं, नहीं है। तुम विलायत गये हो,—तुम म्लेच्छ हो। उस दिन माने तुम्हें पीतलकी लुटियामें पानी पीने दिया था, तुम्हें याद नहीं है ? "

अरुणने एक लम्बी साँस लेकर कहा—नहीं, मुझे याद नहीं। मगर तुम्हारे निकट भी मैं आज अस्पृश्य हूँ, म्लेच्छ हूँ ?

संध्याने आँखें पोंछकर कहा—सिर्फ मेरे निकट ही नहीं, सबके निकट। सिर्फ आजसे ही नहीं, जबसे किसीकी मनाही नहीं सुनी, विलायत चले गये, तभीसे।

अरुणने कहा—मगर मैंने समझा था—

मगर, क्या समझा था, सो वह कुछ भी न कह सका। पल-भर स्थिर रहकर बोला—मैं फिर शायद इस घरमें नहीं आऊँगा, पर तुम मुझसे घृणा मत करो संध्या,—मैंने कभी कोई घृणित काम नहीं किया।

संध्याने कहा—तुम्हें क्या भूख-प्यास नहीं लगी है, अरुणा-भइया ? तुम खड़े-खड़े मेरे साथ सिर्फ झगड़ा ही करते रहोगे ?

अरुणने कहा—नहीं, झगड़ा मैं नहीं करूँगा। मैं इतना छोटा नहीं हूँ कि जो घृणा करता है, उसके साथ आमने-सामने खड़े होकर विवाद करूँ।

यह कहकर अरुण धीरे धीरे बाहर चला गया,—संध्या उस ओर एक टक देखती हुई पाषाण-प्रतिमाकी तरह बैठी रह गई।

माने सामने आकर प्रसन्न मुखसे कहा—जाने दे, अब शायद नहीं आयेगा।

संध्याने चौंककर कहा—नहीं।

माने कहा—खामखा छू गया, जा, कपड़े बदल डाल।

संध्याने माके मुँहकी ओर देखकर कहा—कपड़े तक बदल डालने होंगे ?

उसके म्लान मुखके अन्तरंगकी तसवीर जननी न देख सकी। उसने आश्चर्यसे कहा—बदलने न होंगे ? क्रिस्तान आदमी ठहरा,—कोई विधवा बड़ी-बूढ़ी होती उसे तो नहाना भी पड़ता। उस दिन रासू-मौसी,—हाँ, वह अपनी बड़ाई जरूर करती है,—पर, आचार-विचार सीखना हो तो उससे सीखे। दूलेकी छोकरीने छुआ हो, चाहे न छुआ हो, तो भी नातिनीको उतनी अबेरमें तालमें डुबकी दिलवा ली तब कहीं घरमें घुसने दिया !

संध्याने कहा—अच्छी बात है मा, जाती हूँ।

मा गरदन हिलाकर ब्राह्मणोंके आचार-विचारके सम्बन्धमें शायद और भी कुछ उपदेश देने जा रही थी, पर पीछेसे बुलाहट सुनकर रह गई—

" जग्गो, घरमें है क्या ? "

गोलोक चटर्जी एकदम आँगनके बीचमें आ खड़े हुए; जगद्धात्रीने मुड़कर कहा—अरी मैया, चटर्जी मामा आये हैं ! बड़े भाग्य हैं !

परन्तु, उस दिनकी रासू-मौसी और अपनी लड़कीकी बात याद करके उसका मुँह सूख गया। संध्या उठकर खड़ी हो गई थी, गोलोकने माकी बातका जवाब न देकर लड़कीसे ही सम्भाषण किया। हँसकर कहा—कहो, मेरी संध्या-नातिनी, कैसी हो ? कुछ दुबली-सी दिखाई दे रही हो ?

संध्याने कहा—नहीं तो, अच्छी ही हूँ बाबा।

जगद्धात्रीने अपने सूखे मुँहपर जरा हँसी लाकर कहा—हाँ, अच्छी तो है ही ! महीना पूरा होने आया मामा, रोज बीमार, रोज बुखार। आज भी तो साबू खाये हैं।

गोलोकने कहा—अच्छा, यह बात है क्या ? सो होगा क्यों नहीं बेटी,—कहाँ आज यह गोदमें बाल-बच्चे लिये घर-गिरस्ती करती और कहाँ तुम लोगोंने इसे लटकाके रख दिया ! ब्याहेगी अब कब इसे ? उमर तो—

जगद्धात्रीने उमरकी बातको चटपट दबा देते हुए कहा—मैं अकेली औरत-जात किधर-किधर सम्हालूँ ? तुम्हारे दमाद तो कुछ सुनते समझते ही नहीं,—डाक्टरीमें ही पागल रहते हैं,—धिक्कारके मारे मेरा तो ऐसा जी होता है मामा, कि सब छोड़-छाड़कर सासके पास काशी जा रहूँ। फिर जिसके जो भाग्यमें बदा हो, वह हो।

कहते-कहते उसका गला गद्‌गद हो आया।

गोलोकने कहा—वह पागल अब करता क्या है ?

जगद्धात्रीने कहा—अगर बिलकुल ही पागल हो जायँ तो जान बचे, घरमें जंजीरसे बाँधकर तो रख सकूँ। वह तो दोनोंके बाहर हैं,—न इधरके, न उधरके,—मुझे तो जला-जलाकर बिलकुल खाक कर दिया।

इतना कहकर जगद्धात्रीने आँचलसे आँखें पोंछ डालीं।

गोलोकने सहानुभूतिके स्वरमें कहा—सो तो है ही, सो तो है ही,—मैं सब हाल सुना करता हूँ। पर, तुम लोग भी तो बेटी, धनुष-तोड़ प्रतिज्ञा कर बैठी हो,—जब तक स्वयं कामदेव न मिले तब तक और किसीको लड़की न ब्याहोगी !

हम सब भारी कुलीनोंके घर क्या कभी ऐसा हो सकता है, या हुआ है ? सुना नहीं तूने, उस जमानेमें कितने कुलीनोंको गंगा-यात्रा करते हुए भी कुलीनके कुलकी रक्षा करनी पड़ती थी ?—मधुसूदन ! तुम्हीं सत्य हो !

जगद्धात्रीने क्षुब्ध होकर कहा—किसने तुमसे कहा मामा, कि जमाई मेरा मयूरपर चढ़के न आयेगा तो लड़की न दूँगी ? लड़की पहले है कि कुल पहले ? वंशमें किसीने कभी सूद्दर कायथोंके घर पैर भी नहीं धोये, और मैं चाहूँगी कामदेव ? छोटे घरमें न दूँगी, यह तो मेरा प्रण हैं,—लड़कीको कुएँमें भले ही ढकलेना पड़े।

गोलोकने खुश होकर कहा—यही बात है न ? अच्छा मैं देखूँगा।

जाय-जाय करके भी संध्या सिर झुकाये वहीं खड़ी रही, उसका चेहरा सुर्ख हो रहा था। गोलोकने उसकी तरफ देखकर हँसते हुए×कहा—कामदेव अगर नहीं चाहती जग्गो, तो अपनी लड़कीको मेरे ही हाथ क्यों नहीं सौंप देती ! रिश्तेमें भी रुकावट नहीं, और रहेगी भी राजरानी होकर ! क्या कहती है नातिनी,—पसन्द हूँ मै ?

और कोई समय होता तो इस मजाकमें संध्या भी भाग लेती परन्तु, अरुणसे लेकर पिता तकका प्रसंग छिड़ जानेसे वह क्रोधसे, दुःखसे, लज्जासे जली जा रही थी;—मुँह उठाकर उसने कठोर होकर जवाब दिया—पसन्द क्यों न आओगे बाबा ? बाँस और रस्सीके रथपर सवार होकर इधरहीसे तो निकलोगे, मैं माला गूँथके तैयार खड़ी रहूँगी तब !

इतना कहकर वह जल्दीसे पिछवाड़ेके दरवाजे बाहर चली गई।

यह बात बिलकुल स्पष्ट थी कि वह खूब गुस्सा होकर गई है। व्यर्थके मज़ाककी इस तीव्र लांछनाकी चोटसे पहले-पहल गोलोक दंग रह गये, बादमें कहकहा मारकर थोड़ी-सी सूखी हँसी हँसकर बोले—लड़की क्या है, विलायती पल्टनका सिपाही है ! यह तो, खैर, बाबा-नातिनीका सम्बन्ध है,—कह भी सकती है,—पर रासूके मुँहसे सुना कि उस दिन जो मुँहमें आया सो ही कह डाला। मा-बाप तकको रिहाई नहीं दी।

शुरूमें जगद्धात्रीको ठीक इसी बातका डर हो रहा था, सिर्फ बीचमें उसे आशा हो गई थी कि मज़ाक़में शायद वह अलफ टल गई। और शायद टल ही गई थी, पर लड़कीने निरर्थक ही बामीमें लकड़ी कोंचकर साँपको बाहर निकाला। लड़कीपर उसके गुस्सेकी हद न रही, मगर ऊपरसे विनयके साथ बोली—नहीं

× बंगालमें नातिनी और दोहितीसे मज़ाक़ करनेकी प्रथा है।

मामा, संध्याने तो ऐसी कोई बात नहीं कहीं। मौसी तिलका ताड़ बना देती हैं, सो तो तुम अच्छी तरह जानते हो।

गोलोकने कहा—सो तो जानता हूँ। किन्तु, मेरे साथ ऐसा नहीं करती।

जगद्धात्रीने कहा—मैं तो तब वहीं खड़ी थी, मामा ?

गोलोकने हँसकर कहा—तब तो और भी अच्छा। तुझसे डाँटते भी नहीं बना ?

इस हँसीसे जगद्धात्री मन ही मन कुछ बल पाकर गुस्सेसे बोली—डाँटना ? तुम देख तो लेना मामा, उसकी मैं कैसी दुर्गति करती हूँ।

गोलोकने स्निग्ध भावसे कहा—रहने दे, दुर्गति करनेकी अब ज़रूरत नहीं—ब्याह होनेपर घर-गिरस्तीका बोझ पड़नेपर आप ही सुधर जायगी;—फिर भी, डाँट-डपट थोड़ी बहुत रखना ही चाहिए। समय बड़ा खोटा आ गया है न ? अरू आता है अब ?

जगद्धात्री डरके मारे झूठ बोल बैठी—अरुण ? नहीं तो—

गोलोकने कहा—अच्छी बात है। उस छोकरेको मत आने दिया कर। तरह तरहकी कानाफूसी सुननेमें आती है।

अरुणको संध्या बचपनहीसे भइया कहकर पुकारती आई है। उसके विलायत जानेसे पहले तक दोनोंमें काफी सौहार्द था। परन्तु वह ब्राह्मण-वंशकी इतनी नीची सीढ़ीमें था कि दोनोंका यह स्नेह कभी किसी कारणसे और किसी आकारमें रूपान्तरित हो सकता है, यह संशय स्वप्नमें भी माके मनमें उदित नहीं हुआ था। मगर कुछ दिनोंसे संध्याके आचरण और बात-चीतसे कभी कभी ऐसी एक तीव्र ज्वाला आत्म-प्रकाश कर बैठती थी कि उसकी मिची हुई आँखोंमें भी उसका आभास आ पड़ता। परन्तु, अन्ततोगत्वा यह बात इतनी असम्भव थी कि फिर उसने इस विषयमें उद्विग्न होनेकी भी जरूरत महसूस नहीं की। अब उसी बातका स्पष्ट इशारा दूसरेके मुँहसे सुनकर सहसा वह धीरज न रख सकी। तीखे स्वरमें कह बैठी—सुननेको तो बहुत-कुछ सुना जा सकता है मामा, मगर मेरी लड़कीके बारेमें लोगोंके सिरमें इतना दर्द क्यों ?

गोलोकने मन्द मुसकराहटके साथ कहा—ठीक कहती हो, पर समयपर सावधान हुए बिना लोगोंका जला मुँह रोका भी तो नहीं जाता, जग्गो !

जगद्धात्री इसके भी उत्तरमें कुछ कहना चाहती थी, पर ठीक इसी समय संध्याका कांड देखकर वह भय, विस्मय और भयानक क्रोधसे निर्वाक् हो गई।

संध्या पोखरसे नहाकर घरमें घुस रही थी, उसके कपड़े भीगे थे और सिरके बालोंसे पानी झर रहा था; अभी तक पोंछनेकी भी फुरसत उसे नहीं मिली थी;—इसी अवस्थामें बगलसे निकलकर वह अपने कमरेमें चली गई।

गोलोकने कहा—लड़कीको बुखार न बताया था जग्गो, पर यह तो शामके वक्त नहा आई?

जगद्धात्रीने सिर्फ इतना जवाब दिया, 'क्या जानूँ मामा'; परन्तु मन ही मन वह निश्चय ही समझ गई कि यह उसीके विरुद्ध अरुणको अपमानित करनेका गूढ़ और कठोर बदला है।

गोलोकने कहा—इस तरहकी बढ़ाबढ़ी करनेसे तो हालत बहुत खराब हो जायगी?

जगद्धात्रीने कहा—होगी तो अब क्या किया जाय, बताओ? वह मेरे हाथके बाहर है।

गोलोकने सिर हिलाते हुए कहा—सो तो समझ गया। अच्छा, मैं पूछता हूँ, इस घरका मालिक कौन है? तू, या कि जमाई, या तेरी लड़की?

जगद्धात्रीने कहा—मेरे सिवा और सभी मालिक हैं।

गोलोकने कहा—तो उनसे कह देना कि मुहल्लेमें दूले बाग्दियोंको बसानेसे काम नहीं चलेगा। वे अगर इसका कुछ इन्तजाम न करेंगे तो फिर मुझे ही करना पड़ेगा।—मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है!

प्रत्युत्तरमें जगद्धात्रीने क्रोधके साथ आवाज़ दी—सन्धी, इधर तो आ!

सन्ध्या कमरेके भीतर शायद बाल अँगोछ रही थी, जरा-सा मुँह निकालकर बोली—क्यों मा?

माने कहा—उन लोगोंको तू हटायेगी, या मुझे ही कल नहानेसे पहले झाड़ू मारकर निकाल देना पड़ेगा?

संध्याने कहा—दुःखी अनाथ औरतोंको झाड़ू मारना तो कठिन काम नहीं है मा, पर उन लोगोंने किसीका क्या नुकसान किया है?

गोलोकने इसका जवाब दिया। बोले—नुकसान करतीं क्यों नहीं! परसों टहलके लौटते वक्त देखा कि सड़कपर खड़ी खड़ी बकरीको माँड़ पिला रहीं हैं। छिटकके गिरता तो है ही?

यह कहते हुए उन्होंने जगद्धात्रीके मुँहकी ओर देखा।

जगद्धात्रीने उसी वक्त उनकी बातका समर्थन करते हुए कहा—गिरेगा क्यों नहीं मामा, गिरता ही है।

गोलोकने कहा—भला बताओ तो। बिना जाने तो साँपका विष भी खाया जा सकता है, पर जानके तो नहीं न खाया जा सकता?

फिर संध्याकी तरफ देखकर हँसते हुए कहा—तुम्हारी अभी कच्ची उमर है नातिनी, तुम चाहो तो रातको भी नहा सकती हो, मगर मुझसे तो यह नहीं होगा?

संध्याने भीतरके दुर्दमनीय क्रोधको दबाते हुए कहा—सो जानती हूँ बाबा; मगर, बाबूजीने जब कि उन्हें आश्रय दिया, तब उनका और कहीं ठिकाना किये बिना यों ही निकाल देना भी तो बाबूजीका ही अपमान है,—यह मैं कैसे करूँ?

लड़कीकी इस मान-अपमानकी धारणापर माको इतना गुस्सा आया कि उसके मुँहसे बात ही न निकली। गोलोकने जवाब दिया—अच्छी बात है, उसकी भी क्या कमी है। अरुणके घरके पीछे बहुत-सी ज़मीन पड़ी है, उसीसे कह दे न आश्रय देनेको! बाग्दी-दूले कोई भी हो, हैं तो सब हिन्दू ही,—इससे उसकी जात थोड़े ही मारी जायगी!

इतना कहकर वे जगद्धात्रीके मुँहकी ओर देखते हुए मन्द मन्द हँसने लगे। जगद्धात्रीने इस विनोदको कितना ही क्यों न हृदयंगम किया हो; पर, इस डरसे कि कहीं अरुणकी बातपर उनकी हिताहित-ज्ञान-शून्य लड़की कोई कड़ी बात न कह बैठे, उसकी घबड़ाहटकी सीमा न रही।

ठीक वही हुआ। संध्याके कंठसे परिहासकी तरलता छलक उठी; परन्तु, बातें सुनाई दीं अत्यन्त तीखीं और कठोर। बोली—और अगर जात जाय भी तो कौन उसका जमा-खर्च रखता है बताइए? जो जात ही नहीं मानता, उसके लिए तो जात जाना-रहना दोनों बराबर हैं।

गोलोकने हँसनेकी कोशिश की; पर चेहरा उनका स्याह पड़ गया। बोले—उसकी तुम्हारे साथ इन्हीं सब बातोंकी सलाह हुआ करती होगी, क्यों?

संध्या खिलखिलाकर हँस पड़ी, बोली—हाय हाय, बाबा, जब वे आप जैसे लोगोंको भी कुछ नहीं समझते, कुत्ते-बिल्लियोंमें शामिल करते हैं, तब भला मेरी क्या चलाई! मेरे साथ क्या सलाह करेंगे!

इतना कहकर वह प्रतिवादकी प्रतीक्षा किये बिना ही पल-भरमें वहाँसे गायब हो गई।

जगद्धात्रीसे अब न सहा गया, वह डाँटकर कहने लगी—अभागी ! दूसरेके लड़केको झूठे ही क्यों बदनाम करती है ! उसे कौन नहीं जानता ! उसने ऐसी बात कभी नहीं कही, मै गंगाजल छूकर कह सकती हूँ ।

परंतु घरके भीतरसे कोई जवाब नहीं आया । गोलोकने कहा—नहीं जग्गो, आजकलके लड़के-लड़कियाँ सब ऐसे ही हैं । सो अच्छी बात है, कुत्ते-बिल्ली ही सही । मगर, एक बात कहे जाता हूँ आज, अब लड़कीको ब्याहनेमें देर मत करना । जहाँ-कहीं हो, जल्दी इस पापसे छुटकारा पा ले,—बला टले ।

जगद्धात्री रो दी; बोली—ठीक कर दो न मामा, कहीं देख-सुनकर । अब तो मेरी अकल ही काम नहीं करती ।

गोलोकने सिर हिलाते हुए कहा—अच्छा देखूँगा । पर बात यह है बेटी, तेरे एक ही लड़की है । दूर ब्याह देगी तो तुझसे रहा न जायगा, रोते-रोते मर मिटेगी । हम लोगोंके यहाँ वरकी उमर देखनेसे काम नहीं चलता । पर हाँ, नजदीक हो, दोनों जन आँखोंसे देख सको, तो इससे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है ?

जगद्धात्रीने आँखें पोंछते हुए करुण-कंठसे कहा—इतना सुभीता कहाँसे हो सकता है मामा ? हाँ, अगर घर-जमाई—

गोलोकने बात खतम न होने दी; वे बोल उठे—छि-छि, ऐसी बात मुँहसे भी मत निकाल जग्गो, घर-जमाईसे बढ़कर काल और कोई नहीं; उससे बड़ी निन्दा होती है । और मान ले, अगर कहींसे कोई गँवार-भोंदू पकड़ भी लाया गया, तो गाँजा-चण्डू खा-पीकर, मतवाला बनकर, सब उड़ा-उड़ा देगा । तू अपने ही बारेमें देख ले न ?

इसके भीतरका इशारा समझकर जगद्धात्री उसी वक्त उत्तेजित हो उठी । बोली—हमेशासे ही देख रही हूँ मामा, हमेशा ही जलती-कुढ़ती मरती रही ।

गोलोकने मन्द मुसकराते हुए कहा—हाँ, यही तो बात है । बिना काम-धन्धेके बैठे बैठे खानेसे यही तो होता है । तुझ जैसी बुद्धिमती इस बातको कैसे नहीं समझेगी ?

जगद्धात्रीने खुश होकर कहा—समझती हूँ, भीतर ही भीतर सब समझती हूँ । पर, मैं औरत जात ठहरी, मुझे तो किसी तरफ किनारा नहीं दिखाई देता ।

गोलोकने आश्वासन देते हुए कहा—देगा, देगा, सब दिखाई देगा । जल्दी क्या है,—देखूँगा जरा सोच-विचार कर । पर आज जाता हूँ, शाम हो गई ।

जगद्धात्रीने विनतीके स्वरमें कहा—मामा, खड़े खड़े ही चल दिये, बैठोगे नहीं तनिक ?

गोलोकने कहा—नहीं बेटी, संध्या-जापका समय निकला जा रहा है,—आज अब और देर नहीं करूँगा।

इतना कहकर वे धीरे धीरे बाहर निकल गये। जगद्धात्री उन्हें आगे पहुँचानेके लिए दरवाजेके बाहर तक साथ साथ गई।

५

सबेरेके वक्त प्रिय बाबू अत्यन्त व्यस्तताके साथ प्रैक्टिसके लिए जा रहे थे,—बगलमें होमियोपैथिक किताबें दबी हुई थीं और हाथमें तोलियेमें बँधा दवाइयोंका बक्स;—पीछे पीछे दूलेकी विधवा स्त्री मिन्नत करती हुई जा रही थी—महाराजजी, तुम दया न करोगे तो अब हम लोगोंका और कहीं ठिकाना है ?

प्रिय बाबूको मुँह फेरकर बात करनेकी फुरसत न थी। उन्होंने बायें हाथको पीछेकी तरफ हिलाते हुए कहा—नहीं, नहीं, नहीं,—तुम लोगोंको मैं अब नहीं रख सकता, तुम लोग बड़े शैतान हो। क्यों तूने बकरीको माँड़ पिलाया ?

दूले-बहूने आश्चर्यके साथ कहा—सभीके बकरी-बच्चे तो माँड़ पीते हैं, महाराजजी !

प्रिय बाबूने बहुत ही बिगड़कर कहा—फिर झूठी बात, हरामजादी ! किसीकी भी बकरी माँड़ नहीं पीती। बकरियाँ घास खाती हैं।

दूले-बहूने कहा—घास खाती हैं, पत्ते-बत्ते भी खाती हैं, और माँड़ भी पीती हैं महाराजजी !

प्रिय बाबूने उसी तरह हाथ हिलाते हुए कहा—नहीं नहीं, तुम लोगोंको मैं नहीं रखूँगा, आज ही निकल जाओ। गोलोक चटर्जी कह गये हैं, ब्राह्मणोंके मुहल्लेमें तुम लोगोंने बकरीको माँड़ पिलाया है। अब तुम लोगोंपर मेरी दया नहीं रही,—तुम लोग बड़े शैतान हो।

दूले-बहूने आखिरी मिन्नत की—तो, माँड़को क्या फेंक दिया करूँ महाराजजी ?

प्रिय बाबूने बिना किसी संकोचके कहा—हाँ, फेंक देना होगा। तुम लोगोंके गाय होती, तो पिला सकती थीं, कोई दोष नहीं था। मगर यह तो बड़ी खराब बात है। आज ही चली जाओ,—समझीं ?—ओः बहुत अबेर हो गई,—सलफर देनेका वक्त बीता जा रहा है।

यह कहते हुए वे जल्दीसे जाने लगे, इतनेमें फिर दूले-बहूने पीछेसे करुणस्वरमें कहा—महाराजजी, कलका तमाम दिन-रात बीत गया, लड़कीके पेटमें लछमीजीका दाना तक नहीं पड़ा—

प्रिय बाबू उसी क्षण मुँड़कर खड़े हो गये, बोले—क्यों, क्यों? दस्त हो रहे हैं क्या? जी मचलाता है?

दूले-बहूने सिर हिलाया।

"तो क्या बात है? पेट फूल गया है? भूख नहीं लगती?"

"भूख तो बहुत है महाराजजी।"

प्रिय बाबूने कहा—अच्छा,—तो कहती क्यों नहीं। यह भी तो एक बड़ी भारी बीमारी है, नैट्रम, आइयोडम,—और भी बहुत-सी दवाएँ हैं। तबसे कहा क्यों नहीं,—देख-भालकर एक खुराक दे देता। चल तो देखूँ।—

दूले-बहूने इधर-उधर करते हुए कहा—दवाई नहीं चाहिए महाराजजी,—थोड़ेसे चावल मिल जाते तो लड़कीको राँध देती—

प्रिय बाबूने कुछ देर तक विस्मयके साथ देखते रहकर जल-भुनकर कहा—दवा नहीं चाहिए, चावल चाहिए! चल, हट जा मेरे सामनेसे, हरामज़ादी! छोटी जातके मुँहमें आग दे दे उठाके!

दूले-बहू लज्जित होकर लौटना ही चाहती थी; इतनेमें, प्रिय बाबूने फिर कड़क कर कहा—खानेको नहीं है तो संध्याके पास जाकर क्यों नहीं कहती?

दूले-बहूने सिर्फ मुँह उठाकर देखा और चुप रह गई।

प्रिय बाबूने कहा—उसकी माके पास जाकर मत मरना। घाटके पास जाकर खड़ी रहना; संध्या आवे तब उससे कहना,—मेरे दवावाले बाक्समें एक अठन्नी पड़ी है, दे दे। मगर खबरदार, कहे देता हूँ, बीमार हो तो पहले मुझे बुलाना होगा। तब विपिनके पास जाकर,—कौन? त्रिलोकी हो क्या? षष्ठीचरण हो?—कहो, घरमें तो सब अच्छी तरह हैं?

दूले-बहू चुपचाप लौट गई। त्रिलोकी और षष्ठीचरणने सामने आकर प्रातः प्रणाम करके कहा—जी हाँ, आपके आशीर्वादसे सब अच्छे हैं।

प्रिय बाबूने अस्फुट स्वरमें आशीर्वाद देते हुए कहा—अच्छी बात है, अच्छी बात है। ऐसा वक्त आ पड़ा है कि मुझे तो खाने-पीनेकी भी फुरसत नहीं मिलती। घर-घरमें जुकाम-खाँसी;—जरा-सी लापरवाही की नहीं कि ब्रंकाइटिस!—सबेरे

ही किधर चल दिये ?

त्रिलोकीने कहा—जी, आपहीके पास।

प्रिय बाबूने उत्साहित होकर पूछा—क्यों, क्यों, मेरे पास क्यों ?

त्रिलोकीने कहा—लोगोंको जाने-आनेमें बड़ी तकलीफ होती है जमाई-बाबू, इसलिए बड़े नालेपर एक मचानका पुल बनाना है। पर, आपके उस छोटे बाँस-भिड़ेके बिना तो कुछ होता नहीं।

प्रिय बाबूने गुस्सेके साथ कहा—मैं उसे क्यों देने लगा ? गाँवमें क्या और आदमी नहीं हैं ?

बूढ़ा षष्ठीचरण अब तक चुप था, अब उसने गरदन झुकाकर फिर प्रणाम किया और कहा—अगर अभय दें तो मैं कहूँ जमाई बाबू,—इस गाँवमें आपके सिवा और आदमी ही नहीं। आप दया करें तो दस-भाइयोंको चलनेमें सहूलियत होगी; नहीं तो हम किसान आदमी ठहरे, बाँस खरीदनेको रुपये कहाँ पायेंगे ?

प्रिय-बाबूने क्षण-भर मौन रहकर प्रश्न किया—लोगोंको सचमुच तकलीफ हो रही है क्या ?

त्रिलोकीने कहा—मरे जाते हैं महाराजजी, हाथ-पैर तोड़ तोड़कर बिल्कुल मरे जाते हैं !

प्रिय-बाबूने कहा—मगर, घरमें सुनेगी तो बहुत खफा होगी।

षष्ठीचरणने कहा—आप दे देंगे तो फिर वे क्या करेंगी ? तब, न हो तो, सबके सब जाकर उनके पैरोंपर पड़ जायँगे।

प्रिय-बाबू चिन्तितसे होकर कुछ देर तक खड़े रहे; फिर बोले—लोगोंको तकलीफ होती है, अच्छा, ले लो, जाओ,—मगर, संध्याकी माको मालूम न होने पावे ! उफ् बड़ी अबेर हो गई,—रसिक बाग्दीकी बहूका रातको क्या हाल रहा होगा, कौन जाने ! ब्रायोनियाका ऐक्शन,—हिलने-डुलनेमें दर्द,—यह तो होगा ही। अच्छा, तो मैं जाता हूँ,—जाता हूँ—

इतना कहकर प्रिय बाबू फौरन ही वहाँसे अदृश्य हो गये।

बूढ़ा षष्ठीचरण जरा हँसा; परन्तु, त्रिलोकीने कहा—लोग कहते तो इन्हें सनकी हैं; पर चचा, सनकी महाराजके सिवा गरीब-दुखियोंका दुखड़ा समझनेवाला कोई नहीं। मन तो गंगाजल-सा सादा है, छल-कपट जरा भी नहीं।

यह कहकर उसने, जिस ओर सनकी महाराज गये थे, उस तरफ हाथ जोड़-

कर नमस्कार कर लिया।

पष्ठीचरणने कहा—हुक्म हो गया, अब देर मत करो त्रिलोक, काम झटपट कर डालना ही ठीक है।

त्रिलोकीने गरदन हिलाते हुए कहा—हाँ, अब चल दो चचा।

६

संध्याका अन्धकार धीरे धीरे गाढ़ा होता जा रहा था; परन्तु, तब भी बत्ती नहीं जलाई गई थी। अरुण अपने पढ़नेके कमरेमें अकेला बैठा टेबिलपर पैर फैलाए छतकी कड़ियोंकी तरफ एकटक देख रहा था। उसकी गोदमें एक किताब खुली पड़ी थी; पर, जरा-सा ध्यान देनेसे ही मालूम हो जाता था कि शामके अँधेरेके कारण ही किताब पढ़ना बन्द कर दिया हो, सो बात नहीं; बल्कि, जब काफी उजेला था, तब भी वह किताब इसी तरह पड़ी हुई थी। वास्तवमें, उसी दिनसे वह काम-धन्धेपर नहीं गया,—घरसे बाहर तक नहीं निकला। पिछले कई दिनोंसे उसके मनमें सिर्फ एक ही बात बार बार चक्कर काट रही है—एकके निकट वह बिलकुल ही अस्पृश्य हो गया! घृणा और अशुचिता इतनी दूर तक पहुँच गई कि उसे छूने-मात्रसे भी दूसरेको मुँहका पान तक थूक देना पड़ता है! सहसा उसकी चिन्ता-धारा रुक गई। दरवाजेके पास आहट सुनकर उसने उधर देखकर पूछा—कौन है वहाँ?

"मैं हूँ, संध्या," कहती हुई संध्या दरवाजा खोलकर चौखटके सहारे खड़ी हो गई।

अरुण व्यस्त होकर टेबिलसे पैर उतारके उठ खड़ा हुआ और अत्यन्त विस्मयके स्वरमें पूछने लगा—तुम यहाँ? ऐसे वक्तपर? आओ, भीतर आकर बैठो।

संध्याने कहा—बैठनेको वक्त नहीं है। मैं तालाबमें हाथ-पैर धोने आई थी, छिपकर यहाँ चली आई हूँ। हम लोगोंकी एक बात रखोगे अरुण भइया?

अरुणने अधिकतर विस्मित होकर कहा—बात! तुम लोगोंकी! जरूर रखूँगा, संध्या।

सो मैं जानती थी—कहकर संध्या क्षण-भर चुप रहकर फिर बोली—बाबूजीसे मैंने सुना है कि उस दिनसे तुम कामपर नहीं गये, घरसे निकले तक नहीं,—

क्यों, भला सुनूँ तो सही ?

"मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

संध्याने कहा—ठीक न रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं; पर, यह बात नहीं है। ऐसा होता तो बाबूजी सबसे पहले यही बात कहते।

अरुण चुप रहा। संध्या खुद भी कुछ देरतक स्थिर रहकर बोली—कारण मैं जानती हूँ अरुण भइया। फिर भी, हमारे घर अब तुम कभी मत जाना।

अरुणने धीरेसे गरदन हिलाकर कहा—नहीं, सिर्फ एक तुम्हारे ही घरकी बात नही,—मैं तो दिन-रात यही सोच रहा हूँ कि गाँवको ही छोड़कर किसी ऐसी जगह जा बसूँ जहाँ मनुष्य मनुष्यको, बिना दोषके इतना हीन,—इतना लांछित, नहीं करते हों।

संध्याने मुँह उठाकर कहा—जन्मभूमि छोड़कर चले जाओगे ?

अरुणने कहा—जन्मभूमि ही तो मुझे छोड़ रही है, संध्या। आज तुम्हारे लिए भी मैं ऐसा पातकी हो गया कि तुम्हें भी मुँहका पान थूक देना पड़ा! ऐसी घृणाको सहते हुए भी क्या तुम मुझे इस गाँवमें रहनेको कहती हो ?

संध्या निरुत्तर होकर नीचेको निगाह किये खड़ी रही। अरुणने कहा—आचारके नामपर यह चिरागत संस्कार तुम लोगोंके मनको शायद स्पर्श तक नहीं करता; परन्तु, जहाँ करता है, वहाँ मनुष्यके हाथसे मनुष्यकी यह लांछना उसको कहाँ तक वेदनासे बींध सकती है, इस बातका एक दिन मुझे ही इस तरह अनुभव करना पड़ेगा, यह मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था, संध्या।

संध्या कुछ देर मौन रहकर बोली—परन्तु, इस लांछनाको क्या तुम खुद ही नहीं खींच लाये हो अरुण भइया ?

अरुणने कहा—क्या जानें। पर अच्छा सन्ध्या, प्रायश्चित्त करनेसे क्या इसका कोई उपाय हो सकता है, तुम बतला सकती हो ?

संध्याने कहा—हो सकता है; परन्तु, एक दिन आत्म-सम्मान नष्ट होनेके डरसे तुम स्वयं ही इसके लिए राजी नहीं हुए थे—फिर अगर आज खुद ही उसे विसर्जन कर दो तो मैं कहूँगी अरुण भइया, कि तुम और कुछ भी करो, पर अब यहाँ मत रहो।

अरुणने कहा—मगर, तुम्हारी घृणा तो मुझे वहाँ भी न टिकने देगी!

"पर इससे भी तुम्हारा क्या बनता बिगड़ता है ?"

अरुणने कहा—संध्या, इस बातको तुम भी अपनी ज़बानसे कह सकीं!

संध्याने कहा—तुमने तो मुझे अपने लज्जा,—अपने संकोच,—के आवरण तकको न रखने दिया अरुण भइया! आभाससे, इशारेसे, तुम्हें कितनी बार जताया कि ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। फिर भी, तुम्हारी भिक्षाकी जबरदस्ती किसी भी तरह खतम ही नहीं होना चाहती थी। बाबूजी राजी हो सकते हैं, मा भी भूल सकती हैं; पर, मैं तो नहीं भूल सकती कि मैं कितने बड़े ब्राह्मणकी लड़की हूँ!

अरुणने आश्चर्यसे हतबुद्धि होकर कहा—और मैं?

सन्ध्याने कहा—तुम भी मेरी अपनी जातिके हो,—मगर फिर भी शेर और बिल्ली तो एक नहीं हैं अरुण भइया?

परन्तु बात कह डालनेके बाद वह स्वयं ही मानो मन ही मन सिहर उठी।

अरुण फिर कुछ नहीं बोला; उसने सिर्फ़ संध्याके चेहरेपरसे अपनी विस्मित और व्यथित आँखें हटा लीं।

संध्याने ज़बरन ज़रा हँसनेकी कोशिश करके कहा—तुम कहीं भी क्यों न चले जाओ अरुण भइया, मगर मुझे सहजमें नहीं भूल सकोगे। बहुत दिनों तक तुम्हें याद रहेगी,—बार बार इतना अपमान तुम्हारा किसीने नहीं किया।

अरुणने मुँह उठाकार पूछा—तुम जिस कामके लिए आई थीं, सो तो अभी तक कहा ही नहीं।

संध्या प्रत्युत्तरमें सिर्फ़ ज़रा हँस दी। क्षण-भर चुप रहकर बोली—दुनियामें आश्चर्योंका कोई अन्त नहीं।

इसके बाद और कुछ कहना चाहती थी; पर, सहसा रुककर बोली—लेकिन मेरी इज्जत तुम न रखोगे तो और कोई नहीं रख सकता,—इस बातका तुम्हें विश्वास होता है, अरुण भइया?

अरुण चुपचाप सिर्फ़ देखता रहा।

संध्याने कहा—एककौड़ी दूलेकी विधवा स्त्री और उसकी लड़कीको एक-कौड़ीके बापने घरसे निकाल दिया है; मेरे बाबूजी उन्हें ले आये थे; और, मैंने उन्हें आश्रय दिया था।

"कहाँ?"

"अपने पुराने मवेशीखानेमें। मगर, ब्राह्मणोंके मुहल्लेमें वे रह नहीं सकतीं।"

अरुणने आश्चर्यके साथ पूछा—क्यों?

संध्याने कहा—क्यों क्या, दूले जो ठहरीं। वे हमारे तालाबके घाटसे पानी

भरती हैं, रास्तेपर बकरीको माँड़ पिलाती हैं,—गोलोक नानाका गलतीसे कहीं पैर न पड़ जाय,—माने प्रतिज्ञा की है कि कल सबेरे ही उन्हें झाड़ू मारके निकाल बाहर करेंगी, तब नहायँगीं। तुम उन्हें जगह दे दो न, अरुण भइया। उनके कुछ भी नहीं है,—बेचारी बिलकुल ही निराश्रय हैं।

अरुणने कहा—अच्छी बात है, पर कहाँ जगह दूँ ?

संध्याने कहा—सो मैं नहीं जानती, जहाँ भी हो। तुम्हारे सिवा मैं और किससे कहने जाऊँ ?

अरुणने जरा सोचकर कहा—मेरा उड़िया माली देश गया है,—उसकी कोठरीमें क्या वे रह सकेंगी ? न हो तो, उसकी थोड़ी-बहुत मरम्मत करा दूँगा।

संध्या मुँह उठाकर बात न कर सकी, उसने सिर्फ नीचेको निगाह किये हुए गरदन हिलाकर अपनी सम्मति जाहिर की।

अरुणने कहा—तो, उन्हें जाकर भेज देना। माली आयेगा तब और कुछ बन्दोबस्त कर दूँगा।

संध्या इसका भी जवाब न दे सकी। उसी तरह नीची निगाह किये शायद अपनेको सम्हालनेकी कोशिश करने लगी; उसके बाद धीरेसे बोली—इस समय मेरे मुँहमें पान नहीं है, और हाथ-पैर धोने भी आई हूँ। इस समय, तुम्हें प्रणाम करके जरा पैरोंकी धूल लेती जाऊँ।

इतना कहकर उसने घुटने टेककर नमस्कार किया और उसके पाँवोंकी धूल माथेसे लगाकर वह जल्दी कदम रखती हुई वहाँसे अदृश्य हो गई।

अरुणने उसे वापस बुलाने या और कुछ पूछनेकी चेष्टा नहीं की; सिर्फ, उसी तरफ देखता हुआ वह स्तब्ध होकर बैठा रहा।

७

शायद दो दिन बादकी बात है, जगद्धात्री अपने तालाबसे नहाकर घर लौट रही थी, रास्तेमें रासमणिसे भेंट हो गई। उसका साराका सारा चेहरा उत्तेजना और आग्रहके आधिक्यसे रोना-रोना-सा हो आया था। पास आकर वह अश्रु-गद्गद कंठसे बोली—जग्गो, बिटिया मेरी, तेरी उस पगली लड़कीने आखिर क्या ऐसी तपस्या की थी ! ऐं यह तो स्वप्नके भी बाहरकी बात है !

जगद्धात्री कुछ भी न समझ सकी; परन्तु, बुढ़ियाके मुँहसे लड़कीका नाम सुनते ही मन ही मन डर गई। उसने उत्कंठित होकर पूछा—क्या हुआ मौसी ? क्या किया संध्याने ?

रासमणिने कहा—जो किया है, सो दुनियामें और किस लड़कीने किया है ? जा, भीगे कपड़ोंसे, भीगे बालोंसे जाकर श्रीधर भगवानको साष्टांग नमस्कार कर आ। पंचानन और विशालाक्षीके थानमें पूजा चढ़वा दे। पर मुझे, बेटी, गलेमें इष्ट-कवच धारण करनेके लिए एक पतली-सी सोनेकी गोट बनवा देनी होगी, यह मैं पहलेसे ही कहे देती हूँ !

जगद्धात्रीने व्याकुल होकर कहा—क्या हुआ है मौसी, खुलासा बिना कहे मैं समझूँगी कैसे ?

रासमणिने जरा हँसकर कहा—खुलासा कहना होगा ? तो कहती हूँ, सुन। तुम महतारी-बिटियाने बहुत पुण्य किया है, नहीं तो ऐसा कभी नहीं होता। तू सोचँ सोचके मरी जा रही थी, लड़कीका व्याह कैसे होगा,—अब जा,—एकदम राजाकी सास बनकर बैठ।

बात सुनकर जगद्धात्री दोनों आँखें कपालपर चढ़ाकर देखती रह गई।

रासमणिने सदय कंठसे कहा—तेरे अकेलेका दोष नहीं है जग्गो, सुनकर मैं भी इसी तरह ताकती रह गई थीं। मालूम हुआ, शायद सोते-सोते सपना देख रही हूँ।

जगद्धात्रीने कहा—खुलासा बताओ न मौसी, क्या हुआ है ? जमीन-आसमान सोचते सोचते मेरा तो हाल बेहाल हुआ जा रहा है।

रासमणिने तब जगद्धात्रीका बायाँ हाथ अपनी मुट्ठीमें लेते हुए कानके पास मुँह ले जाकर चुपकेसे कहा, "बातको छिपाये रखना बेटी, मारे खुशीके अभी तुरन्त ही इधर-इधर कह मत डालना,—नहीं तो कोई भाँजी मार देगा। मेरे सिवा चटर्जी भइया और किसीपर विश्वास नहीं करते; इसीसे, सबेरे ही बुलाकर मुझसे कहा, 'रासू, जगद्धात्रीको खबर पहुँचा दे जाकर। उसे अपनी लड़कीके लिए अब चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। मेरे ही हाथमें सौंपकर राजाकी सास बनकर पैरपर पैर रखके अपने घर बैठी रहे। मनमें सोचा, मेरी भी तो वैकुण्ठपुरी सूनी है, खानेको दौड़ती है,—लड़का भी बरबाद हुआ जा रहा है—खैर, एक काममें दो काम सध जायेंगे। एक तो ब्राह्मणकी कुल-रक्षा हो जायगी और दूसरे गाँवकी

लड़की गाँवमें रह जायगी। उनके सिर्फ एक वही लड़की तो है,— ”

परन्तु, अपनी बातको वह, राजाकी भावी सासके मुहँकी ओर देखकर, खत्म न कर सकी। सुनते सुनते जगद्धात्रीकी हालत ऐसी हो गई जैसे काठ मार गया हो।

रासमणि चंचल होकर कहने लगी—क्या हुआ री जग्गो ?

जगद्धात्रीने अपनेको सम्हाल लिया और एक गहरी साँस लेकर कहा—नहीं मौसी, गोलोक मामाने तुमसे हँसीमें कहा है।

“ हँसी क्या री ? मेरी इतनी उमर हो चुकी; हँसी किसे कहते हैं, मैं नहीं जानती और फिर भाई-बहनमें हँसी ? ”

जगद्धात्रीने कहा—हँसी तो है ही मौसी। यह भी कहीं हो सकता है ?

रासमणि जरा हँस दी। बोली—सो तो सच है बेटी, मुझे भी पहले ऐसा ही मालूम हुआ था। मालूम हुआ, शायद सपना ही देखा होगा। लेकिन, बादमें समझी, कि नहीं, जाग रहीं हूँ। लड़कीकी तक़दीर ज़रूर जबरदस्त है। नहीं तो, कुलीन घरानेकी लड़कीका भाग्य ऐसा कभी किसीने देखा है, या सुना है ! मैं असीस देती हूँ, अहिवाती बनी रहे; लेकिन, मैंने जो जो कहा है, आज ही करना जाकर बेटी। और, बात पाँच कानों तक फैलने न पावे। पहले ही भले भले आशिर्वाद * हो जाने दे।

जगद्धात्रीके मुँहसे कुछ बात नहीं निकली, वह चुपचाप खड़ी रही।

रासमणिने फिर कहा— इसी अगले अगहनके बाद ही,—सुनते हैं फिर साल-भर तक सहालग नहीं है। मेरे चटर्जी भइयाकी इच्छा—

इतना कहकर वह मुसकरा दी, फिर बोली—और, हो भी क्यों नहीं, बता ! लड़की भी तो बिलकुल लक्ष्मीकी-सी प्रतिमा है ! देखनेसे मुनियों तकके मन बिचल जायँ फिर गोलोककी कौन चलाई !

इतना कहकर हँसते हुए उसने उँगलीसे जगद्धात्रीकी बाँह मसककर कहा— जा बेटी, भीगे कपड़े पहने अब ज्यादा मत खड़ी रह,—उस जून फिर आऊँगी, बहुत बातें करनी हैं।

इतनी बात करके, फिर, वह जरा भी समय नष्ट न करके, सीधी घरकी तरफ चल दी।

जगद्धात्री लगभग डगमगाते पैरोंसे जैसे-तैसे घर पहुँचीं; और ठाकुरद्वारेके

बरामदेमें धप-से पानीका घड़ा रखकर भीगे कपड़ोंसे वहीं बैठ गई। उसकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये।

संध्या उसकी एकमात्र सन्तान है। उसकी बड़ी लाड़ली संध्या रूप और गुणमें सचमुच लक्ष्मीकी प्रतिमा है। पर, उस प्रतिमाके विसर्जनका आह्वान आया गोलोक चटर्जीके नरक-कुंडसे। जो गोलोक लड़कीके नानासे भी उमरमें बड़ा है, उसीके हाथ लड़की सौंपनेसे तो, अच्छा है, वह मर जाय। यह बात माकी छातीके भीतर आगकी तरह दहकने लगी; परन्तु मुँहसे, वह 'नहीं' शब्द भी उच्चारण न कर सकी। वह स्वयं भी तो कुलीन ब्राह्मणकी लड़की ठहरी,—समाज और परिवारमें यह कोई विचित्र बात नहीं, इससे भी बहुत ज्यादा दुर्गति उसने स्वयं अपनी आँखों देखी है,—इसीलिए, अपनी लड़कीकी बात याद करके भीतरसे उसका हृदय भक भक जलते रहनेपर भी, उसे बुझानेके लिए, एक बूँद पानी तक उसे चारों तरफ कहीं ढूँढ़े न मिला। अकेली बैठकर वह चुपचाप केवल आँसू पोंछने लगी; और, बार बार यही सोचने लगी कि बहुत ही जल्द शायद यह बात एक दिन सत्य हो जायगी,—हो सकता है कि, उस बीभत्स आदमीकी दुर्जय वासनाको रोकनेके लिए कोई उपाय ही ढूँढ़े न मिले। रह-रहकर उस दिनके सकौतुक रहस्यालापकी बातें ही उसे बार बार याद आने लगीं,—उनमें इतना ज़हर छिपा हुआ था, तब इस बातका सन्देह कौन कर सकता था?

बाहरके दरवाजेसे संध्या एक चिट्ठी पढ़ती हुई एक एक डग रखती हुई भीतर आ रही थी। पढ़ना शायद खत्म न हुआ था, किसी भी तरफ बिना देखे ही आवाज़ दी—मा, मा री!

जगद्धात्रीने झटपट आँसू पोंछकर जवाब दिया—बिटिया?

माके भारी गलेकी आवाज़से संध्याने चौंककर सिर उठाया, और धीरेसे पास आकर पूछा—क्या हुआ है मा?

जगद्धात्रीने लड़कीकी तीक्ष्ण दृष्टिकी तरफसे अपना मुँह फेर लिया, बोली—कुछ भी तो नहीं, बेटी।

संध्या और भी नज़दीक आ गई और अपने आँचलसे माके आँसू जतनसे पोंछती हुई करुण कंठसे पूछने लगी—बाबूजीने क्या और कुछ कर डाला है मा?

जगद्धात्रीने सिर्फ कहा—नहीं।

लड़कीको विश्वास न हुआ। आहिस्तेसे वह जननीके पास बैठकर बोली—

संसारमें सभी बातें आदमीके मनकी-सी नहीं होतीं, मा। सभी तो मेरे बाबूजीको सनकी महाराज कहा करते हैं, तुम भी क्यों नहीं उन्हें वैसा ही समझ लेतीं?

जगद्धात्रीने कहा—वे समझ सकते हैं, उसमें उनका कोई नुकसान नहीं,—लेकिन, मुझ जैसा तो किसीको जलना-भुनना नहीं पड़ता, संध्या।

यह जलना-भुनना क्या है और उसके लिए किसको कहाँ कैसी यंत्रणा सहनी पड़ती है, यह बात संध्याकी समझमें न कभी पहले आई, और न आज आई।

इसलिए, अपने निरीह, निर्विरोधी, परदुःख-कातर, अल्पबुद्धि पिताके दुःखसे उसका चित्त स्नेह और समवेदनासे परिपूर्ण हो उठा; और दोनों आँखें डबडबा आईं। बोली—अगर मेरे वशकी बात होती मा, तो, बाबूजीको लेकर मैं वन-जंगल पहाड़-पर्वत या ऐसी किसी जगह चली जाती, जहाँ दुनियाके किसीको भी उनके लिए जलना-भुनना न पड़ता।

जगद्धात्रीने जल्दीसे अपनी लड़कीकी ठोढ़ीपर हाथ लगाकर चूम लिया और स्नेहके साथ कहा—भगवान् ऐसा न करें। पर, मैं तो जैसे तेरी सौतेली मा हूँ। उनसे आधा भी तू अगर मुझे प्यार करती, संध्या।

संध्याने कहा—तुम्हें क्या प्यार नहीं करती, मा?

माने कहा—पर उनके लिए तो तू अपने प्राण दिये देती है,—पाँवमें कंकड़ भी न गड़ने पावे, ऐसा तेरा भाव रहता है। तू अच्छी तरह जानती है कि उनकी दवासे कुछ भी नहीं होता; फिर भी, तू जान देने बैठी है; और किसीकी दवा न खायगी,—कहीं उन्हें शर्मिन्दा न होना पड़े! यह सब क्या मैं समझती नहीं संध्या?

संध्याने दोनों हाथोंसे माके गलेसे लिपटकर हँसते हुए कहा—हाँ, सो तो है ही। बाबूजी सरीखा डाक्टर क्या और कहीं है भी?

माने कहा—नहीं है, यह सच है!

संध्याने नाराज होकर कहा—जाओ, रहने दो, तुम्हें हँसी न करनी होगी। आदमीकी बीमारी एक ही दिनमें थोड़े ही अच्छी हो जाती है। मैं तो पहलेसे बहुत-कुछ अच्छी हो गई हूँ!

इतना कहकर चटसे प्रसंग बदलकर बोली—दूले-बहू चली गई मा! अच्छा हुआ, बला टली!

"कब गई?"

"मालूम नहीं। शायद, तड़के ही उठके चली गई है।"

परन्तु, उसकी कृत्रिम उदासीनता माको भुलावा न दे सकी। माने पूछा—कहाँ चली गई, तू जानती है ?

संध्याने उसी तरह उदासीन-भावसे कहा—शायद अरुण-भइयाके उस घरके पीछेवाले बगीचेमें। उनके उड़िया मालीकी एक टूटी-फूटी कोठरी थी न ? शायद उसीमें।

जगद्धात्रीने पूछा—अरुणके पास किसने भेजा उसे ? तूने भेजा होगा ?

संध्या भीतर ही भीतर बड़ी अड़चनमें पड़ गई। फिर भी, किसी तरह सीधा झूठ बचाती हुई बोली—अरुण-भइयाके पास मैं क्यों उन्हें भिजवाने चली, मा! मैंने किसीको किसीके पास नहीं भेजा।

इतना कहकर उसने इस अत्यन्त भद्दे प्रसंगको झटपट उलटकर हाथकी चिट्ठी सामने रख दी; बोली—असल बात थी, सो तो तुम्हें बताई ही नहीं अभी तक, मा। मेरी संन्यासिनी दादी अबकी काशीसे सचमुच ही आयेंगीं, लिखा है उन्होंने। वे तो कभी झूठ बोलती नहीं मा,—अबकी शायद, उनकी दया हो गई—

जगद्धात्रीने उत्सुक होकर पूछा—माकी चिट्ठी है ? कब आनेको लिखा है ?

जगद्धात्रीकी काशी-वासिनी संन्यासिनी सास काशी छोड़कर एक दिनके लिए भी कहीं जाना नहीं चाहती थीं। अबकी बार जगद्धात्रीने उन्हें बहुत बहुत आग्रहसे लिखा था कि उनकी इकलौती पोतीके ब्याहमें जरूर आना पड़ेगा और कन्या-दान देना होगा। सास दान देनेके लिए तो किसी भी तरह राजी नहीं हुईं; पर, उन्होंने यथासमय उपस्थित होनेके लिए लिख भेजा है।

संध्या आपने ब्याहके जिक्रसे शरमाकर बोली—अपनी चिट्ठीका जवाब तुम ही पढ़ो न मा।

कहते हुए संध्याने कागज माके पास रख दिया, और सहसा व्यग्र होकर कहा—अरे मा, तुम अभीतक भीगे ही कपड़े पहने हो,—जाऊँ, तुम्हारी सूखी धोती दौड़के ले आऊँ।

इतना कहकर वह जल्दीसे चली गई।

जगद्धात्रीने चिट्ठी माथेसे लगाकर कहा—बहूपर इतने दिनोंके बाद अब सचमुच ही दया हुई मा!

कहती हुई वह भी धीरेसे उठकर ठाकुरद्वारेकी ओर चलने लगी,—इतनेमें सहसा उसके पति शोर-गुल मचाते हुए घर आ पहुँचे। वे कह रहे थे—दो

दिनसे गया नहीं, बस, चटसे हाइपोकांड्रिया डेवलप हो गया!

पतिके साथ जगद्धात्रीकी विशेष बातचीत न होती थी; परन्तु उनकी इस अति-व्यस्तता और खासकर दोपहरके बारह बजेके पहले आज अकस्मात् घर लौट आनेसे मन ही मन उसे कुछ आश्चर्य हुआ। मुँह उठाकर श्रान्त कण्ठसे पूछा--किसको क्या हो गया?

प्रिय बाबूने कहा—अरुणको। ठीक हाइपोकॉण्ड्रिया है, मैं जो डायगनोस कर दूँगा, किसीके बापकी मजाल है जो काट जाय? भला बताये विपिन इसके मानी?

और कोई समय होता तो शायद जगद्धात्री बात ही न करती; परन्तु, अरुणका नाम सुनकर जरा कुछ उद्विग्न हो उठी, बोली--क्या हुआ है अरुणको?

प्रिय बाबूने कहा--कहा तो अभी। विपिन ही नहीं समझ सकता, तो तुम क्या समझोगी! आखिर वह थोड़ी बहुत प्रैक्टिस-फ्रैक्टिस तो करता ही है। चीज वस्त बाँधी जा रही है,--घर-द्वार जमीन-जायदाद सब बेच दी जायगी,--हाराधन कुण्डुको खबर दे दी गई है,—भाग्यसे मैं वहाँ पहुँच गया! जिधर न गया, जिधर एक दिन निगाह चूकी, कि एक न एक अनहोनी बात हुई धरी है। इस तरह तो मेरा जीना दुश्वार हो गया भइया,—अरे संध्या! कहाँ चली अब? चट-से 'मटीरिया-मेडिका' तो उठा ला, बेटी। एक रेमिडी सिलेक्ट करके उसे दवा दे आऊँ।

"आई बाबूजी," कहकर एक मोटी किताब हाथमें लिये हुए संध्या पिताके पास आ खड़ी हुई।

जगद्धात्रीने नाराज होकर कहा—पैरों पड़ती हुँ तुम्हारे, साफ़ साफ बताओ, क्या हुआ है अरुणको?

प्रिय बाबू चौंक पड़े, थोड़ी देर बाद बोले—ओहो, हाइपो,--मानसिक रोग। आज ही कलके अन्दर—हारान कुण्डुको सब बेच-बाचकर वह देश छोड़कर चला जाना चाहता है। सो नहीं होनेका, हरगिज़ नहीं,—यह सब मैं नहीं होने दूँगा। एक बूँद दो-सौ पावरकी—

संध्याका मुँह फक पड़ गया, वह नीचेको निगाह किये चुप-चाप खड़ी रही। जगद्धात्रीने व्याकुल कण्ठसे कहा--घर-द्वार बेचकर चला जायगा अरुण? वह क्या पागल हो गया है?

प्रिय बाबूने सामनेको हाथ उठाकर कहा—उफ़, नहीं भाई, सो बात नहीं।

बिलकुल पूरा हाइपोकॉड्रिया है ! पागल नहीं हुआ,—उसको तो इन्सैनिटी कहते हैं। उसकी अलग दवा है। विपिन होता तो यही कह बैठता, और क्या, मगर—

जगद्धात्रीने कनखीसे एक बार लड़कीके मुँहकी ओर देख लिया, और पतिकी अनर्गल वक्तृताको सहसा दृढ़ कण्ठसे रोककर अत्यन्त स्पष्टताके साथ कहा—तुम्हारी निजी बातें सुननेकी मुझे फुरसत नहीं। यह कहो कि अरुण क्या देश छोड़कर चला जाना चाहता है ?

प्रिय बाबूने कहा—चाहता है ? जानेकी बिलकुल तैयारी भी हो चुकी। सिर्फ मैंने जाकर—

"फिर मैंने ?—यह बताओ कि अरुण कब जायगा ?"

प्रिय बाबू घबरा-से गये, बोले—कब ? आज भी जा सकता है, कल भी जा सकता है, सिर्फ हारान कुण्डु नालायक—

जगद्धात्रीने पूछा—हारान कुण्डुने सब कुछ खरीद लेनेके लिए कह दिया है ?

प्रिय बाबूने कहा—जरूर, जरूर। वह पाजी तो यही चाहता है। पानीके मोल मिले तो—

जगद्धात्रीने फिर प्रश्न किया—इस बातको गाँवका और भी कोई जानता है ?

प्रिय बाबूने कहा—कोई नहीं, कानी चिरैया तक नहीं। सिर्फ मैं ही भाग्यसे—

जगद्धात्रीने कहा—तुम्हारे भाग्यकी बात जाननेकी मुझे गरज नहीं। तुम एक बार उसे यहाँ बुला ला सकते हो ? कहना, तुम्हारी चाचीने अभी तुरत बुलाया है, बहुत ज़रूरी काम है।

संध्याने अब तक एक भी बात न कही थी, वह चुपचाप खड़ी सुन रही थी। अब उसने आँख उठाकर देखा। उसका चेहरा एकदम पीला पड़ गया था। बात शुरू करते हुए उसके ओठ तक काँप उठे; परन्तु, इसके बाद ही उसने दृढ़ कंठसे कहा—मा, तुम उन्हें बार बार क्यों अपमानित करना चाहती हो ? तुम्हारा उन्होंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, भला ?

जगद्धात्रीको बहुत ही आश्चर्य हुआ, उसने पूछा—कौन उसका अपमान करना चाहता है संध्या ?

संध्याने कहा—नहीं, तुम इस मकानमें उन्हें हरगिज़ नहीं बुला सकतीं।

जगद्धात्रीने कहा—बुलाकर क्या दो अच्छी बातें कहनेमें भी दोष है ?

संध्याने कहा—अच्छी हों चाहें बुरीं, वे रहें या चले जायँ, घर-दोर बेचें चाहे न बेचें,—हमारे साथ उनका क्या सम्बन्ध है जो तुम कहने जाओगी ? इस मकानमें अगर तुमने उन्हें बुलाया मा, तो मैं तुम्हारी ही कसम खाकर कहती हूँ, उस तालाबमें जाकर डूब मरूँगी ।

कहते कहते ही वह जल्दीसे वहाँसे चली गई, माके जवाबकी प्रतीक्षा तक न की।

दुःसह विस्मयसे जगद्धात्री दोनों आँखें फाड़कर खड़ी देखती रह गई। सिर्फ प्रिय बाबू चिल्लाकर कहने लगे—अरे, किताब तो देती जाती संध्या! अबेर हो गई है, एक रेमिडी सिलेक्ट कर डालूँ ।

संध्या लौट आई और हाथकी किताब पिताके पैरोंके पास रखकर चली गई। वे वहीं बैठकर दवा चुननेमें मशगूल हो गये ।

जगद्धात्री कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही; फिर पतिको लक्ष्य करके बोली—तुमने क्या लड़कीका ब्याह न करना ही तय कर लिया है ?

प्रिय बाबूने अपना काम करते करते ही जवाब दिया—करूँगा क्यों नहीं ? ज़रूर करूँगा ।

" कब करोगे ? आखिर कुछका कुछ हो जायगा, तब ? "

" हूँ ! "

जगद्धात्री क्षण-भर स्थिर रहकर बोली—रसिकपुर न चले जाओ एक दिन ?

प्रिय बाबूने खुले हुए पन्नेको एक जगह उँगलीसे दबा लिया और फिर मुँह उठाकर देखा; बोले—रसिकपुर ? किसको क्या हुआ है ? कोई खबर दे गया है क्या ? कब दे गया ?

जगद्धात्रीने एक उसास लेकर कहा—जयराम मुखर्जीके नातीके साथ जो ब्याहकी बात छिड़ी थी, जाओ न, जाकर एक बार उस लड़केको देख आओ !

प्रिय बाबूने कहा—मगर जाऊँ कब ? देख तो रही हो, एक जून न रहनेपर क्या हाल होता है । अरुणकी यह दशा है, और उधर चटर्जी साहबका आदमी खबर दे गया है कि उनकी साली बहुत बीमार है ।

जगद्धात्रीने कुछ आश्चर्यके साथ पूछा—कौन, ज्ञानदा बीमार है ? क्या हो गया उसे ?

प्रियनाथने कहा—अम्ल ! अम्ल ! खानेकी गड़बड़ीसे अजीर्ण। सिर्फ जी मचलाता है,—अरुणके यहाँसे लौटकर जाऊँगा, एक ही बूँद—

जगद्धात्रीने कहा—उनके यहाँ दवा देनेवाले बहुत हैं। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, एक बार चले जाओ रसिकपुर। लड़केको एक बार देख आओ, फिर आकर चाहे जो करो, पर लड़कीके व्याहका कुछ उपाय कर दो।

गृहिणीके अश्रु-विकृत कंठ-स्वरने शायद प्रिय बाबूको कथञ्चित् प्रकृतिस्थ कर दिया। बोले—लेकिन, लड़का, तो सुनते हैं, बहुत ही आवारा है! हरदम नशेमें—

जगद्धात्री अब धीरज न रख सकी। सहसा रो पड़ी, बोली—करने दो नशा-पानी, होने दो आवारा, लड़की दो-चार दिन सुहाग-सिन्दूर तो लगा सकेगी। तुम और क्या थे? तुम्हारे हाथ मेरे बाप-मा अगर मुझे सौंप सके, तो फिर तुम क्यों नहीं सौंप सकते?

इतना कहकर वह आँचलसे आँखें पोंछती हुई जल्दीसे भीतर चली गई।

प्रिय बाबू दंग रहकर कुछ देर तक देखते रह गये, फिर किताब बन्द करके एक गहरी उसास लेकर बोले—दो दो सख्त बीमार मरीज हाथमें है,—इस तरह कहीं रेमिडी सिलेक्ट की जा सकती है!

कहते हुए उन्होंने एक गहरी साँस ले ली, और किताब बगलमें दबाकर वे धीरेसे बाहर निकल गये।

* * *

८

स्नान, पूजा-पाट और यथाविहित सात्त्विक जल-पानादि सम्पन्न करके मूर्तिमान् ब्रह्मण्यकी भाँति गोलोक चटर्जी महाशय धीरे धीरे नीचे उतरे, और सम्भवतः सीधे बाहर जानेको तैयार थे, कि सहसा कुछ याद आ जानेसे बगलके बरामदेसे घूमते हुए भंडार-घरके सामने पहुँच गये और अकस्मात् अत्यन्त उद्वेगसे परिपूर्ण होकर बोल उठे—एं, यह सब क्या हो रहा है, बताओ तो, छोटी मालिकिन? जब खराब तबीयत है, तब यह घर-गृहस्थीका काम खाक-धूल न किया करो तो कौन-सा हर्ज हो जायगा? मैं तो कहता हूँ!—अच्छा, देह पहले है कि काम पहले?

ज्ञानदा हँसियासे तरकारी बना रही थी, बनाती ही रही। न उनकी खड़ाऊँओंकी विकट खटखट आवाज़ उसके कानोंतक पहुँची, और न उनका उत्कंठित अनुयोग ही उसने सुना।

गोलोकने क्षण-भर चुप रहकर फिर कहा—बात क्या है ? आज सबेरे तबीयत कैसी रही ?

ज्ञानदाने मुँह ऊपर न उठाया, हाथके बैंगनकी तरफ ही आँखें लगाये गरदन हिलाकर जता दिया—अच्छी।

गोलोकको बहुत ही तसल्ली हुई, बोले—अच्छी बात है, अच्छी बात है। मैं तो जानता हूँ न, प्रियनाथ है तो सनकी आदमी, पर दवा देनेमें धन्वन्तरि है। लेकिन, जैसे जैसे वह कहता जाय ठीक समयपर वैसे ही पीती जाना। लापरवाही करनेसे काम न चलेगा, हाँ, सो कहे जाता हूँ !

ज्ञानदाने इतनी बातोंमेंसे किसीका भी जवाब नहीं दिया, वह नीचेको निगाह किये ही अपना काम करती रही।

गोलोक कुछ देरतक उसकी तरफ देखते रहे, फिर बोले—प्रियनाथसे खास तौरसे कह दिया है, दोनों जून आकर देख जाया करेगा,—सबेरे आया था न ?

ज्ञानदाने उसी तरह नीचेको मुँह किये सिर हिलाकर जवाब दिया—हाँ।

गोलोक खुश होकर बोले—आयेगा क्यों नहीं ! आयेगा क्यों नहीं ! वह तो मेरा पूरा अनुगत है। पर दइया राँड़ कहाँ गई ? वह दवा दे जायगा और तुम इधर मेहनत करते करते शरीर बिगाड़ती रहोगी, यह मैं नहीं होने दूँगा ! मैं पूछता हूँ, सब गये कहाँ ? रहने दो यह सब यो ही पड़ा ! जाओ, ऊपर जाकर जरा आराम करो।—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !

इतना कहकर गोलोक फिलहाल परका और अपना लौकिक और पारलौकिक कर्तव्य समाप्त करके बाहर चलनेकी तैयारी करने लगे।

उनकी खड़ाऊँओंकी आवाज़से चकित होकर इतनी देर बाद अब ज्ञानदाने मुँह उठाकर देखा। आज उसके चेहरेपर उस दिनकी वह प्रसन्न हँसी नहीं थी, वह चिन्ता और विषादके काले बादलोंसे आच्छन्न हो रहा था। आँखें सुर्ख थीं, पलकोंके किनारे आँसुओंकी झलक मानो अब तक विद्यमान थी,—अपनी उसी सजल दृष्टिको गोलोकके मुँहकी ओर स्थिर करके अकस्मात् रुँधे हुए गलेसे पूछ बैठी—तुम क्या प्रिय बाबूकी लड़की संध्यासे ब्याह करना चाहते हो ? मुझे धोखा न दो, सच सच बता दो।

गोलोक घबरा-से गये, सहसा कुछ जवाब न दे सके; परन्तु, दूसरे ही क्षण बोल उठे—मैं ?—संध्याके साथ ? नहीं तो। किसने कहा ?

ज्ञानदाने कहा—किसीने भी कहा हो ! रासू जीजीको तुमने उसकी माके पास भेजा था ? अगले अगहनमें ही ब्याह करना ठीक हो गया है ? भगवानकी दुहाई है, सची बात कहना !

गोलोकने अस्फुट तर्जनके साथ डाँटते हुए कहा—रासी बाम्हनी कह गई है ? अच्छा, देखता हूँ मैं उसे !

ज्ञानदा कहने लगी—तो फिर क्यों तुमने मेरा सर्वनाश किया ? मुँह दिखाने—कहीं खड़े होने तककी भी मेरे लिए जगह नहीं—

कहते कहते उसका विकृत कण्ठ एकसाथ छाती-फाड़ रोनेकी सहस्र धाराओंमें फट पड़ा।

गोलोक व्याकुल हो उठे। चारों ओर भयभीत दृष्टिसे देखते हुए हाथ उठाकर दबी आवाज़से कहने लगे—अरे रे ! यह कर क्या रही हो, क्या कर रही हो ! लोग-बाग सुन लेंगे ! झूठ,—झूठ,—झूठी बात है जी ! मज़ाक़में—

ज्ञानदाने रोते रोते कहा—नहीं, हरगिज नहीं, मज़ाक़ नहीं है,—यह बात कभी झूठ नहीं हो सकती। यह सची बात है ! तुम सब कर सकते हो ! तुम्हारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं है !

"नहीं नहीं, कहता हूँ न मज़ाक़ है,—हँसी हँसीमें,—नातिनी है न,—अरेरे ! चुप हो जाओ,—नौकर-चाकर आ जायँगे !"

कहते हुए गोलोक खटखट खटाऊँ खटकाते हुए घबड़ायेसे वहाँसे भाग खड़े हुए।

ज्ञानदाके हाथका बैंगन हाथहीमें रह गया, वह मुँहमें आँचल ठूँसकर भीतरसे जोरसे आती हुई रुलाईको जी-जानसे रोकनेकी कोशिश करने लगी।

घरकी नौकरानीने हाँफते हुए आकर खबर दी—मौसीजी, नौकरानीको साथ लिये नानाजी तो खुद ही यहाँ आ पहुँचे हैं।

ज्ञानदाने चटपट आँखें पोंछकर जिज्ञासु दृष्टिसे नौकरानीकी ओर देखा। उसकी अश्रु-कलुषित व्यथित दृष्टिके सामने दासीने विस्मय और लज्जाके साथ कहा—तुम्हारे यहाँकी उस पुरानी नौकरानीको साथ लेकर तुम्हारे ससुरजी आये हैं, मौसीजी।—क्या हुआ जी !

खबर सुनकर ज्ञानदाके चेहरेपर मानो खूनका लेश भी न रह गया। आमने-सामने स्वयं मौतको देखकर भी आदमी शायद ऐसा पीला नहीं पड़ जाता।

दासी डर गई, बोली—क्या हुआ है मौसीजी ?

ज्ञानदाने इसका भी कुछ जवाब नहीं दिया, वह सिर्फ विह्वल शून्य दृष्टिसे देखती रही।

दासीने फिर कहा—क्या तुम्हारी कुछ तबीयत खराब है, मौसीजी ?

अब ज्ञानदाने सिर हिलाकर कहा—हाँ। बाबूजी कबके आये हैं, काली ?

दासीने कहा—सो तो नहीं जानती, मौसीजी। अभी हाल ही देखा मैंने, वे आँगनमें खड़े बाबू साहबसे बातें कर रहे हैं।

ज्ञानदाने आश्चर्यके साथ पूछा—बाबूके साथ ?

नौकरानीने कहा—हाँ। मैं बाहरसे आ रही थी, बाबूने बुलाकर कहा, काली अपनी मौसीजीसे कह आ कि उनके ससुरजी उन्हें लिवाने आये हैं।—अरी अम्मा,—वे तो खुद ही यहाँ आ रहे हैं !

इतना कहकर नौकरानी वहाँसे जरा हटकर खड़ी हो गई। दूसरे ही क्षण लाठीकी आवाज़से मालूम हुआ कि जिनकी वह लाठी है, उन्हें चलने-फिरनेके लिए अपनी आँखोंकी अपेक्षा लाठीपर ही अधिक निर्भर रहना पड़ता है।

दूसरे ही क्षण एक अधेड़ उमरकी स्त्रीके पीछे एक वृद्ध पुरुष लाठीके सहारे रास्ता ठीक करता हुआ भीतर आ पहुँचा, और पुकारकर बोला—मेरी बेटी, कहाँ है तू ?

ज्ञानदाने उठकर उनके चरणोंके आगे सिर टेककर प्रणाम किया, और वह सामने खड़ी हो गई। वृद्ध ससुरने पहचान न पानेपर भी चेहरा देख लिया। आशीर्वाद देते हुए वे रो पड़े, बोले—बुढ़िया बूढ़ेको इस तरह भूलकर तू कैसे रहती है बेटी ?

जो स्त्री साथ आई थी, उसने घुटने टेककर प्रणाम करके कहा—ठीक ही तो कह रहे हैं बहूजी। बूढ़ी सास मर रही है,—उसके मुँहमें सिर्फ एक ही रट है, मेरी बहूको लिवा लाओ,—मेरी बहूको बुला लाओ ! उसे इतने दिनों तक कैसे भूली रहीं, बताओ तो ?

ज्ञानदा, इस अभियोगका कुछ जवाब न देकर, एक हाथसे आँसू पोछते हुए दूसरे हाथसे वृद्ध ससुरका हाथ पकड़कर उन्हें बरामदेमें ले गई और अपने हाथसे आसन बिछाकर उन्हें बिठाकर चुपचाप नीचेको मुँह किये खड़ी हो रही।

वृद्ध बैठकर कहने लगा—चटर्जी महाशयको दो चिट्ठियाँ दीं, पर एकका भी

जवाब नहीं मिला। मनमें सोचा, बड़े आदमी ठहरे, काम-धन्धेसे फुर्सत न मिलती होगी, हम जैसे गरीबोंको जवाब देनेकी बात उनके ध्यानमें ही न आती होगी ! लेकिन बेटी, तू तो मेरी इस दुखियाके ही घरकी लक्ष्मी है,—

जो दासी साथ आई थी, वह बीच-हीमें बोल उठी—बहनोई बड़े आदमी हैं तो इससे क्या, इससे कोई घरकी बहूको इतने दिनों तक दूसरेके घर थोड़े ही पड़ी रहने देगा, बहूजी। इसके सिवा जिनकी सेवाके लिए आई थीं वे बहन ही जब मर गईं ! मैं कहती हूँ—

वृद्ध ससुरने बाधा देकर कहा—रहने दे सदो, उन सब बातोंको। तुम्हारी सास बहुत बीमार है, बहू। आज अच्छा दिन देखकर ही उसने भेजा है कि बहूको एक बार—

सदो बोली—बहूजी, तुम्हारे ही लिए शायद उनके प्राण नहीं निकल रहे हैं। कई दिनोंसे रट लगा दी है,—सदो, बहन मेरी, जा तू, एक बार इन्हें लेकर चली जा। लाकर एक बार उसे दिखा दे मुझे।

कहते कहते सदोका गला करुणासे भीग गया।

वृद्ध ससुरने कहा—चटर्जी साहबको मेरी दोनों ही चिट्ठियाँ नहीं मिलीं; सो तो हम लोगोंको मालूम नहीं था। हम लोग वहाँ न जाने क्या क्या सोच रहे थे। बड़े भले आदमी हैं,—साधु पुरुष हैं। सुनते ही कहा—इसमें क्या है ! आपके घरकी बहूको आप ले जायँगे, इसमें आपत्ति कैसी ? पालकी लानेके लिए कह दिया। तुम्हारी सासकी बीमारीका हाल सुनकर बड़े दुःखसे कहने लगे,—बड़ी विपत्तिके दिनोंमें आपने ज्ञानदाको भेजा था, अब आपकी विपत्तिके दिनोंमें ऐसा पत्थर दुनियामें कौन होगा जो उसे विदा करनेमें आनाकानी करेगा ! अभी तुरंत ले जाइए, मैं सब बन्दोबस्त किये देता हूँ।

ज्ञानदा अब तक बिलकुल चुपचाप खड़ी थी, अकस्मात् फक चेहेरेसे बोल उठी—चटर्जी जीजाने कही है यह बात ? अभी तुरंत भेज देंगे ? आज ही ?

सौदामिनीने खुश होकर कहा—हाँ, कहेंगे क्यों नहीं। बल्कि, उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि खा-पीकर चल दीजिए तो तीन बजेकी गाड़ी मिल जायगी और आसानीसे कल सबेरे अपने घर पहुँच जाओगे। इसके सिवा जब घरमें मराऊ रोगी पड़ा है, तब क्या एक दिनकी भी देरी की जा सकती है, बहूजी ! बेचारी बूढ़ी सास तो दिन-रात हाय-हाय करके तुम्हारी बाट जोह रही है।

ज्ञानदा मानो मशीनकी पुतलीकी तरह सिर्फ़ अपनी पहली कही हुई बातको ही दुहरा सकी। बोली—उन्होंने कहा है भेज देंगे? आज ही?

वृद्धने सिर हिलाकर कहा—हाँ, बेटी, आज ही तो! रुका थोड़े ही जा सकता है!

मगर, सौदामिनी बिगड़ उठी थी, उसके कंठ-स्वरसे वह छिपा भी न रहा। बोली—सुन लो बात इनकी! सास मर रही है,—जिनके घरकी बहू है, वे खुद लेने आये हैं,—फिर भला कौन नहीं भेजेगा, बताओ? इसके सिवा अब यहाँ रहोगी भी किस लिए? अच्छी बात है, न हो तो अपने बहनोईसे तुम्हीं फिरसे पुछवा लो बहूजी।

परन्तु, पुछवानेकी ज़रूरत नहीं पड़ी। शायद, वे कहीं पास ही खड़े थे, खड़ाऊँ खटखटाते हुए आ पहुँचे ड़े व्यस्तसे मालूम पड़ रहे थे। वृद्धको लक्ष्य करके कहने लगे—नहीं मुखर्जी साहब, अब बैठके बातें करनेसे काम न चलेगा। अबेर हुई जा रही है, नहा-धोकर पूजा-पाठ करते और खा-पीकर जरा आराम करते-कराते वक्त हो जायगा। उधर फिर 'सायत' अच्छी नहीं है।—आप भी खूब हैं! भेजनेमें आपत्ति! हम लोगोंको थोड़ी-बहुत तकलीफ होगी सो होती रहेगी, इससे क्या,—मौका ही ऐसा है! सास खाटपर पड़ी है, मेरे पीछे तो हजार झंझटें हैं,—जरा भी फुरसत नहीं, नहीं तो मैं खुद जाकर ज्ञानदाको छोड़ आता। चिट्ठी एक भी नहीं मिली! मिल जाती तो आपको तकलीफ उठाकर थोड़े ही आना पड़ता! डाकिया जितने हैं सब साले नालायक हैं!—काली कहाँ चली गई? भोलूसे न हो तो कह दे, यहीं तम्बाकू भर लावेगा! उठिए मुखर्जी साहब, अब देरी न कीजिए, उठिए। ज्ञानदा, जरा जल्दी करो,—उधर फिर तीन बजेकी गाड़ी भी तो मिलनी चाहिए! ओह,—चोंगदार बाहर बैठा हुआ है,—जबसे घरवालीका इन्तकाल हुआ है, तबसे न जाने कैसा मन हो गया है मुखर्जी साहब, कुछ भी याद नहीं रहता!—मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है! तुम्हारा ही भरोसा है!

कहते हुए गोलोक चटर्जी जिस रास्ते आये थे, उसी रास्ते सारे मकानको खड़ाऊँओंकी कठोर आवाज़से मुखरित करते हुए वापस चले गये।

ज्ञानदाने एक भी बातका जवाब न दिया,—सिर्फ उसी तरफ देखती हुई पत्थरकी तरह कड़ी होकर खड़ी रही।

भोलूने आकर कहा—मौसीजी, लल्लू नहानेके लिए रो रहे हैं। उन्हें नदी ले जाऊँ?

ज्ञानदा उसी तरह निश्चल निस्तब्ध बनी रही, नौकरकी बात उसके कानों तक भी न पहुँची।

वृद्ध ससुर धीरेसे उठकर खड़े हो गये, बोले—बेटी, तो फिर मैं बाहर जाता हूँ, तुम तैयार हो लो।

सदोने कहा—आज मेरी षष्ठी है बहूजी, कह देना इस जून मैं भात न खाऊँगी—

ज्ञानदा सहसा मुड़कर खड़ी हो गई और बोली—मैं नहीं जाऊँगी।

वृद्ध ससुर चौंक पड़े, बोले—नहीं जाओगी? क्यों बेटी, आज तो अच्छा दिन है?

सौदामिनी अपने षष्ठीव्रतका फलाहार भूलकर साथ ही साथ बोल उठी—हम लोग तो भट्टाचार्यजीसे दिन-मुहूरत सब सुधवाकर घरसे चले हैं, बहूजी!

ज्ञानदाने सिर्फ कहा—नहीं बाबूजी, मैं न जा सकूँगी।

गोलोकका दस-बारह वर्षका लड़का दौड़ा आया और उससे जबरदस्ती करने लगा—मौसी, तुम कह दो न मौसी, मैं नदी नहाने जाऊँगा—हूँ—नहीं, मैं जाऊँगा,—हाँ—

ज्ञानदाने किसीसे कुछ नहीं कहा, वह सिर्फ उस उद्दण्ड लड़केको जोरसे छातीसे चिपटाकर फूट-फूटकर रोने लगी।

९

उसके बाद ज्ञानदाने कमरेमें जाकर जो किवाड़ बन्द किये, सो फिर खोले ही नहीं। वृद्ध अन्धे ससुर दोपहर-भर विमूढ़ बुद्धि-भ्रष्टकी भाँति चुपचाप बैठे रहे, और अन्तमें धीरे धीरे घरसे बाहर चल दिये। साथमें सौदामिनी भी चल दी। इस अप्रत्याशित मनाहीका कारण उसकी समझमें भी न आया, फिर भी वह औरत ठहरी,—इस तरह चुपचाप लौट जाना उसके बूतेसे बाहरकी बात थी। जानेसे पहले ज्ञानदाके बन्द दरवाजेके बाहर खड़े खड़े उसने जो बातें कह सुनाईं, वे न तो सुन्दर थीं और न मधुर। लेकिन, ज्ञानदाने किसी भी बातका जवाब नहीं दिया। यहाँ तक कि उसने अपने रोनेका शब्द भी रंचमात्र बाहर न जाने दिया। छोटेपनमें विधवा होनेके बादसे अब तक जिस सासने उसे छातीसे लगाकर पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, आज वे मृत्यु-शय्यापर पड़ी

उसकी याद कर रही हैं,—उसका मुँह देखनेके लिए उनके प्राण तक मुक्त नहीं हो रहे हैं,—यह कैसी भयानक बात है और किस तरह वह इस व्यथाको अपने बन्द कमरेमें अकेली सहन कर रही है, इस बातको सिर्फ एक जगदीश्वरहीने देखा। बाहर उसका कोई भी साक्षी न रहा।

चलते समय गोलोकने वृद्ध मुखर्जी महाशयसे भेंट की और विनयके साथ उन्हें राह-खर्च देना चाहा, साथ ही ज्ञानदाके न जानेपर उससे भी बढ़कर आश्चर्य और वेदना प्रकट की।

गोलोकने बाहरकी बैठकमें आकर देखा कि मृत्युंजय भट्टाचार्य बैठे हैं। मृत्युंजयने खड़े होकर नमस्कार किया। गोलोकने प्रति-नमस्कार भी न किया, जरा-सी गरदान हिलाकर कहा—तुम्हें बुलवा भेजा था बेटाजी!

मृत्युंजयने कहा—जी हाँ, सुनते ही तो मुँहमें दो गस्सा डालकर दौड़ा चला आ रहा हूँ, चटर्जी महाशय।

गोलोकने कहा—सो तो आ ही रहे हो, सगाई सम्बन्ध तो करते रहते हो; मगर कुछ देशकी भी खबर-अबर रखते हो? हाँ, तुम्हारे बाबा, रामरतन शिरोमणि जरूर सच्चे घटक थे। समाज उनके लिए नख-दर्पण-तुल्य था।

मृत्युंजयने कहा—जी मेरा क्या अपराध है? यह सब क्या औरतोंके वशका काम है? खैर कुछ भी हो,—मगर जग्गी बाम्हनीकी लड़कीकी हिमाकत तो देखिए चटर्जी महाशय! रासू बुआके मुँहसे सुननेके बाद हम सब तो गुस्सेसे जले जा रहे हैं।

गोलोकने अत्यंत आश्चर्यके साथ कहा—क्या, क्या? बात क्या है बताओ तो सही?

"आपने क्या कुछ सुना नहीं?"

"नहीं नहीं, कुछ नहीं। क्या हुआ है?"

मृत्युंजयने कहा—आपका भी घर सूना है, और सुना है उस लड़कीका भी कहीं ब्याहका सिलसिला नहीं है, आप दया करके दो फूल डालकर ब्राह्मणके कुलकी रक्षा करना चाहते थे, सो छोकरीने बड़े तावसे सबके सामने कहा है,—उस बातको मुँहसे कहते भी नहीं बनता चटर्जी साहब,—कहा है कि, घाटके मुरदेके गलेमें फटे जूतोंकी माला बनाकर पहनाऊँगी!—और उसके मा-बाप भी, सुनते हैं, इस कहनेमें शरीक थे।

मारे क्रोधके गोलोककी आँखें और मुँह लाल सुर्ख हो उठा; परन्तु, एक लमहेमें अपनेको सम्हालकर वे 'हाः हाः हाः' हँसते हुए बोले—कहा है क्या ? छोकरी है तो बड़ी मुँहफट !

क्रुद्ध मृत्युंजयने कहा—हुआ करे मुँहफट, इससे क्या आपको ऐसी बात कहेगी ? जानती नहीं वह, आपके चरणोंमें माला चढ़ानेसे उसकी छप्पन पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता ! आप कहते क्या हैं ?

गोलोकने प्रशान्त और प्रसन्नमुखसे कहा—बच्चे ठहरे ! बच्चे हैं अभी ! गुस्सा नहीं करना चाहिए जी मृत्युंजय,—गुस्सा नहीं करना चाहिए ! मेरी इज्जतको वह क्या समझे,—जानते हो तुम लोग, और जानते हैं अन्य दस गाँवोंके लोग।

मृत्युंजयने अपने गलेको कथंचित् संयत करके पूछा—तो क्या बात सच नहीं है ? आपने क्या रासू बुआसे—

गोलोकने कहा—राधामाधव ! तुम भी क्या पागल हुए हो बेटाजी ! जिसकी ऐसी गृह-लक्ष्मी चली गई, वह क्या फिर—

कहते कहते वे अकस्मात् जोरकी उसास लेकर बोले—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !

उनके भक्ति-गद्‌गद उच्छ्‌वासके उत्तरमें मृत्युंजय क्या कहे, उसकी कुछ समझमें न आया, वह सिर्फ उनके मुँहकी ओर देखता रह गया।

गोलोक कुछ देर बाद उदास कंठसे कहने लगे—खाक-धूल कुछ भी तो याद नहीं रहता,—और लोग तो दिन-रात खाये ही डालते हैं मुझे। इसे बचाओ, उसकी रक्षा करो, अमुकका कुल उद्धार करो,—मुझे तो तुम जानते ही हो, हमेशासे अन्यमनस्क उदासीन आदमी ठहरा,—हो सकता है, मुँहसे कभी किसीके सामने कुछ निकल गया हो।—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है ! तुम्ही गति-मुक्ति हो !

घटक मृत्युंजयके हाथमें चाँद आ गया, विनयके साथ बोला—जी, अगर यह बात है, तो आपको हमारे प्राणकृष्ण मुखर्जीकी लड़कीको अपने चरणोंमें स्थान देना पड़ेगा। ब्राह्मण बड़ा गरीब है, लड़कीकी उमर भी तेरह-चौदह वर्षकी हो चुकी,—लड़की क्या है लक्ष्मी है, देखनेमें भी सुरूपा है !

गोलोकने कहा—तुम पागल हुए हो मृत्युंजय। मेरे लिए क्या अब यह सब शोभा देता है, या अच्छा लगता है ? हाँ तो, लड़की क्या इतनेहीमें चौदह सालकी हो गई ? खूब बढ़नी देह है, सुना है !

मृत्युंजयने उत्साहित होकर कहा—जी हाँ, खूब खूब। इसके सिवा जैसी शान्त है, वैसी ही सुन्दरी।

गोलोकने मन्द मुसकराते हुए कहा—मेरे लिए, और सुन्दरी! सुरूपा!—कैसी लक्ष्मीकी प्रतिमा खो दी है!—मधुसूदन!—किसीका भी दुःख सहा नहीं जाता, सुननेसे दुःख होता है। जब तू तेरह-चौदह वर्ष कह रहा है तो पन्द्रह-सोलहकी तो होगी ही! ब्राह्मण बड़ी विपत्तिमें है, ऐं?

मृत्युंजयने सिर हिलाकर कहा—इसमें क्या सन्देह!

गोलोकने कहा—समझता सब हूँ मृत्युंजय, कुलीनके कुलकी रक्षा करना कुलीनका ही काम है। न करनेसे प्रत्यवाय * होता है। परन्तु, एक तो शोक-तापका शरीर, उमर भी समझ लो पचासके पास पहुँच रही है,—लेकिन, न जाने कैसा स्वभाव है मेरा, दूसरोंकी विपत्तिकी बात सुनते ही हृदय जैसे रोने लगता है,—नाहीं करते नहीं बनता।

मृत्युंजय बार बार सिर हिलाने लगा। गोलोक फिर एक गहरी साँस लेकर कहने लगे—इस स्वभाव-कुलीनके गाँवमें समाजका शिरोमणि बनना कैसी आफत है, सो मैं ही जानता हूँ। कौन भूखों मर रहा है, किसके पास पहननेको कपड़े नहीं, किसका इलाज नहीं हो रहा है,—यह सब तो बना ही हुआ है,—उसपर यह सब जुल्म, मेरा तो जीना दूभर हो गया मृत्युंजय! प्राणकृष्ण गरीब है,—लड़की खूब बड़ी हो गई है, ऐं? तेरह-चौदहकी नहीं जी, पन्द्रह-सोलहसे कम हरगिज़ न होगी,—अच्छा तो, कह देना प्राणकृष्णसे, न हो तो एक बार मिल जाय—

मृत्युंजयने व्यग्र होकर कहा—आज ही भेजे देता हूँ,—बल्कि अपने साथ ही लिवा लाऊँगा।

गोलोकने उदास कंठसे कहा—ले आना। पर, बड़ी मुश्किलमें डाल दिया तुमने,—गरीब ब्राह्मणको इस संकटमें नाहीं कैसे करूँगा!—मधुसूदन! त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन!—जो करायेंगे, वही करना होगा। हम सब तो निमित्त-मात्र हैं।

मृत्युंजय चुप बना रहा।

---

* शास्त्रोक्त कर्म न करनेसे लगनेवाला पातक।

गोलोकको सहसा मानो किसी बातकी याद आ गई। बोले—हाँ, सुनो, तुम्हें जिस कामके लिए बुलाया था, वह बात तो अभी कही ही नहीं। मेरा कहना था; यह महीना बड़ी तंगा-तुंगीसे चल रहा है, तुम अपने ब्याजके रुपये—

मृत्युंजयने करुण कंठसे कहा—इस महीनेमें अगर जरा दया करें—

गोलोकने कहा—अच्छा अच्छा, खैर जाने दो, न सही इस महीनेमें। मैं तकलीफ देकर एक पाई भी नहीं लेना चाहता। पर बेटाजी, तुम्हें भी मेरा एक काम करना होगा।

मृत्युंजय प्रसन्न होकर बोला—जी, आज्ञा दीजिए।

गोलोकने कहा—सनातन हिन्दू धर्मको बचाते और समाजकी रक्षा करते हुए चलना मामूली जिम्मेवारी नहीं है, मृत्युंजय। यह महान् भार जिसके सिरपर है, उसे सब तरफसे आँख-कान खोले रहना पड़ता है। प्रियनाथकी माके बारेमें, उस समय, न जाने क्या गोलमालकी बात सुननेमें आई थी। इस मामलेमें पक्की खबर तुम्हें उनके गाँव जाकर गुप्त रूपसे लानी होगी। हाँ, इस मामलेमें तुम्हारे बाबा शिरोमणिजी सिद्धहस्त थे, बीस-तीस गाँवोंकी नब्ज़का हाल तो उनकी ज़बान-पर रहता था,—भूपति चटर्जीका मैंने दस साल तक हुक्का-नाई बन्द रखा था,—भाई साहबको अन्तमें नेस्त-नाबूद होकर ही गाँव छोड़के भाग जाना पड़ा,—और वह तुम्हारे बाबाकी ही सहायतासे ही हुआ था! मगर, तुम लोग, बेटा,—उनका नाम न रख सके, यह बात तो माननी ही पड़ेगी।

मृत्युंजय अपने पूर्वजोंकी तुलनामें अपनी हीनता महसूस करके बहुत ही लज्जित हुआ; बोला—आप देख लीजिएगा चटर्जी साहब, मैं एक ही हफ्तेके अन्दर उनके पेट तककी खबर निकाल लाऊँगा।

गोलोकने उत्साह देते हुए कहा—सो तुम ला सकते हो, ला सकते हो। कितने बड़े वंशके लड़के हो, सो भी तो देखो। मगर, एक बात है बेटाजी, इस विषयमें पाँच कानों तक बातचीत पहुँचानेकी ज़रूरत नहीं,—बात तुम्हारे और हमारे अन्दर ही रहे। समाजकी इज्जत-आबरू रखनेके लिए बहुत समझ-बूझकर काम करनेकी ज़रूरत है। हाँ तो, सुनो, सिर्फ ब्याज ही नहीं, तुम्हारे असल रुपयोंके बारेमें भी मैं सोचूँगा; तकलीफमें हो तुम, यह बात अगर पहले जता देते—

मृत्युंजय पुलकित हो उठा, बोला—जी, जो आज्ञा, जो आज्ञा,—हम तो आपहीके चरणोंमें पड़े हैं। मैं कल ही इसका पता लगाने जाऊँगा।

इतना कहकर वह चलने लगा।

गोलोकने दाँतोंतले जीभ दबाकर कहा—ऐसी बात जबानपर भी मत लाना, बेटाजी। मैं तो निमित्त-मात्र हूँ,—'उन्हीं'के श्रीचरणोंमें कीटानुकीटके समान पड़ा हुआ हूँ।

यह कहकर उन्होंने ऊपरकी ओर शिव-नेत्र करके हाथ जोड़ नमस्कार कर लिया।

मृत्युंजय जा रहा था, अन्यमनस्क गोलोक सहसा बोल उठे—और सुनो, प्राणकृष्णको भेजना मत भूल जाना। जबसे ब्राह्मणके संकटकी बात सुनी है, मेरा हृदय रो रो उठता है!—नारायण! मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है!

* * * *

१०

प्रसिद्ध जयराम मुखर्जीके दौहित्र चिरंजीव वीरचन्द्र बनर्जीके साथ संध्याका ब्याह होना पक्का हो गया। कल वर-पक्षके लोग आशीर्वाद करने आयेंगे। कन्या-पक्षके घर उसीकी तैयारियाँ हो रही हैं। अगहनके आखिरमें ब्याह है, बस यह एक ही सहालग है, फिर बहुत दिनों तक सहालग नहीं है। इसी सिलसिलेमें बहुत वर्षों बाद, बहुत खुशामद-बरामदके बाद, जगद्धात्रीकी सास काशीसे आई हैं। शामके बाद भंडारेके बरंडेमें बैठकर दिएके उजालेमें जगद्धात्री मिठाई बना रही है और उसके पास ही कम्बलके आसनपर बैठी हुई वृद्धा सास कालीतारा माला फेर रही है। जाड़ा शुरू हो गया है, उसकी देहपर एक गेरुआ रंगकी लोई पड़ी हुई है और पहनावा भी उसी रंगका है। पुत्र-वधूकी ओर देखकर उसने शान्त स्वरसे पूछा—ब्याहके अब कुल दस ही दिन बाकी हैं, क्यों बहू?

जगद्धात्रीने मुँह उठाकर देखा, और कहा—कहाँ रहे दस दिन मा? आजके दिनको लेकर नौ दिन रहे हैं। यह काम हो जाय तो जान बचे। इस जले देशमें जब तक कोई काम पूरा पूरा हो न जाय, तब तक मानो भरोसा ही नहीं होता।

सासने जरा हँसकर कहा—सभी देशोंमें यह डर है बेटी, सिर्फ तुम्हारे ही गाँवकी बात नहीं। और फिर इसमें आसा-भरोसेकी कौन-सी बात है बहू, जब ऐसी लछमीकी प्रतिमा-सी लड़कीको पानीमें बहा रही हो?

जगद्धात्री चुपचाप काम करने लगी, उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

सास कहने लगी—प्रियसे सब सुन लिया है मैंने। आज सबेरे नहाके लौटते

वक्त अरुणको भी देखा। ऐसा सोनेका चाँद-जैसा लड़का तुम्हें पसन्द न आया, बहू ?

जगद्धात्री विशेष खुश न हुई, बोली,—लेकिन सिर्फ पसन्दगी ही सब कुछ नहीं है, मा।

सासने कहा—नहीं है, माना। पर लौटकर संध्यासे जिकर करके उसके हृदयका थोड़ा-सा जो कुछ आभास मिला, उससे तो दुःखसे मेरी छाती फटने लगी। अच्छा बहू, मा होकर भी क्या तुम्हारी निगाहमें यह बात नहीं आई ?

निगाहमें बात तो उसके बहुत दिन पहले ही आ चुकी थी, परन्तु उसे मंजूर करना बिलकुल ही असम्भव था। बल्कि, डरते हुए इधर-उधर देखकर उसने दबी जबानसे कहा—काम-काजका घर है, कोई आ गया तो सुन लेगा मा।

सासने फिर कुछ न कहा; परन्तु जगद्धात्री अपने कंठ-स्वरकी रूक्षतासे स्वयं ही लज्जित होकर आहिस्तेसे बोली—अच्छा मा, तुम ऐसी बात कैसे कह रहीं हो ! अपने इतने बड़े कुलकी इज्जत पानीमें बहाकर तुम कैसे लोगोंके सामने मुँह दिखातीं, बताओ तो ? इसके सिवा उसके जात भी नहीं रही। जिन लोगोंने उसकी तरफसे तुम्हारे सामने वकालत की है, क्या उन लोगोंने यह बात भी तुम्हें बतलाई है ?

जगद्धात्रीने सोचा था कि इसके बाद फिर कोई कुछ कह ही नहीं सकेगा। परन्तु सासने गरदन हिलाकर कहा—बतलाई क्यों नहीं। पर उसका कुछ भी गया नहीं बहू, सब कुछ मौजूद है। सिर्फ उसकी विद्या-बुद्धिकी ही तरफसे नहीं कहती मैं। छोटी जात होनेसे जिन दो अनाथ लड़कियोंको तुमने निकाल दिया, उसने उन्हें भी छातीसे लगा लिया। उसकी जात भगवानके वरसे अमर हो चुकी बहू, उसे अब आदमी नहीं मार सकता।

जगद्धात्री मन ही मन कुपित होकर बोली—अनाथ होनेसे ही क्या दूले-डोम ब्राह्मणोंके घर रहेंगे मा ? शास्त्र क्या यही कहते हैं ?

सासने कहा—सास्तर क्या कहते हैं, सो तो मैं ठीक तौरसे नहीं जानती बहू ! पर अपनी व्यथाको ठीक जानती हूँ। मेरी बात किसीसे कहनेकी नहीं है; पर, ऐसी व्यथा अगर तुम्हें होती, तो समझतीं बहू, कि छोटी जातके कारण आदमीसे घृणा करनेकी सजा भगवान् कहाँसे बराबर दे रहे हैं। यह जो कुलकी इज्जत है, यह कितना बड़ा पाप है, कितनी बड़ी धोखेकी टट्टी है, यह अगर तुम्हें मालूम हो

जाता तो अपनी लड़कीको तुम इस तरह बलि न चढ़ा सकतीं। जात और कुल यदि सत्य है, तो क्या दो आदमियोंके सारे जीवनका सुख-दुःख ही झूठ है बेटी?

जगद्धात्रीने क्षुब्ध होकर कहा—तो क्या इस झूठको लेकर ही दुनियाका काम चल रहा है मा?

सासने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा—दुनियाका तो चलता नहीं बहू, चलता है सिर्फ हमारी जैसी शापग्रस्त जातका। मैं परदेसमें रहती हूँ, उमर भी बहुत हो चुकी है, मैंने बहुत कुछ देखा है और बहुत दुख पाया है;—मैं जानती हूँ जिसे तुम वंशकी इज्जत समझती हो, वास्तवमें वह है क्या। पर, बात तुम्हें खोलकर नहीं कह सकती, शायद तुम समझ भी न सकोगी। फिर भी, यह बात मेरी याद रखना बहू, झूठको इज्जत देकर जितना ऊँचा बनाये रखोगी, उतनी ही ग्लानि, उतना ही कीचड़, उतना ही अनाचार इकट्ठा होता रहेगा। और हो भी यही रहा है।

जगद्धात्री कुछ जवाब देना चाहती थी; पर लड़कीको आते देख चुप रह गई। संध्या पिछवाड़ेके बगीचेमें अब तक अपने फूलोंके पौधोंमें पानी दे रही थी; घरमें आकर हाथका लोटा आँगनके चबूतरेपर रखकर सामने आ खड़ी हुई और माकी तरफ देखकर बोली—यह क्या है मा? चन्द्रपूली * है क्या?

यह कहकर चटसे उसने दादीकी ओर मुड़कर कहा—क्यों दादी, सबके यहाँ लड्डू बनते हैं, हमारे यहाँ क्यों नहीं बने?

कालीताराने स्नेहके साथ कहा—सो तो मैं नहीं जानती बिटिया।

संध्याने कहा-वाह, तुमने अपनी साससे यह बात पूछी नहीं मालूम होती है!

कालीताराने कहा—कैसे पूछती बेटी, जनममें कभी ससुरालका मुँह तक तो देखा नहीं!

जगद्धात्री इस बातको जानती थी, वह लज्जित होकर चुपचाप अपना काम करने लगी। संध्याने फिर पूछा—अच्छा दादी, तुम्हारी सब मिलाकर कितनी सौतें थीं?—एक सौ?—दो सौ?—तीन सौ?—चार सौ?

दादी फिर हँस दी। बोली—ठीक ठीक नहीं मालूम बिटिया! पर इतनी भी हों तो कोई अचम्भेकी बात नहीं। मेरा ब्याह हुआ था आठ सालकी उमरमें, तब उनकी स्त्रियाँ थीं छियासी। उसके बाद भी बहुत-से ब्याह किये थे, पर कितने,—सो शायद वे भी न जानते थे, कैसे जानती?

---

* नारियलकी एक प्रकारकी अर्द्धचन्द्रकार मिठाई।

संध्याने कहा—ओ हो, उनके पास लिखे तो होंगे ? उस बहीको अगर छुड़ाकर रख लेतीं, दादी, तो बाबूजीसे कहकर उनका पता लगवाती कि वे सब अब कहाँ कहाँपर हैं। मेरे न जाने कितने चाचा, कितने ताऊ, कितने भाई-बहन अब भी मौजूद होंगे क्यों न दादी ? ओ हो, उन सबको अगर जान पहचान लेती !

थोड़ा-हँसकर वह फिर पूछने लगी—अच्छा दादी, बाबा दैवयोगसे अगर कभी आ जाते थे तो तुम्हें कितने रुपये देने पड़ते थे ? मोल-भाव करनेमें तुम्हारे साथ खूब तकरार भी हो जाया करती होगी,—न ?

जगद्धात्री नाराज हो उठी। बोली—यह पुरखापन छोड़के ठाकुरजीके भोगकी तैयारी तो कर डाल, संध्या।

दादी खुद भी जरा हँसकर बोली—सब कुछ तो जानती हो बिटिया, पर, तो भी तो, तुम लोगोंका मोह दूर नहीं होता।

यह सब विरुद्ध आलोचना शुरूसे ही जगद्धात्रीको अच्छी न लग रही थी; और, मन ही मन वह नाखुश भी कम न हो रही थी। अब सासकी बातके जवाबमें उसने कहा—तबकी बात तो मैं जानती नहीं मा, पर अब न कोई इतने ब्याह ही करता है और न वैसे अत्याचार ही होते हैं। और, अगर मान भी लिया जाय कि कुछ लोग उस समय अन्याय करते थे, तो इससे क्या कोई वंशकी इज्जत छोड़ देगा मा ? मेरे जीतेजी तो ऐसा नहीं होनेका।

घर-मालिकिन पतोहूके गरम कण्ठस्वरसे सास चुप रह गई। परन्तु, संध्या व्यथित हो उठी, उसने दादीके और जरा पास जाकर कोमल स्वरमें पूछा–मगर, वे अत्याचार क्यों करते थे दादी ? उनमें क्या माया-ममता न होती थी ?

दादीने संध्याका हाथ पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया, और कहा—माया-ममता कैसे होगी, बेटी ? एक रातके सिवा जीवनमें जिसके साथ फिर कभी शायद भेंट मुलाकात ही न होती हो, उसके लिए किसीका हृदय रो सकता है भला ? तुम्हारे ऊपर जो होने जा रहा है, वह क्या और किसीसे कम अत्याचार है बेटी ?

जगद्धात्री हाथका काम छोड़कर सहसा उठ खड़ी हुई और अत्यन्त कठोर स्वरमें लड़कीसे बोली—तू ठाकुरद्वारेको जायगी, या मैं ही काम-काज छोड़कर उठ जाऊँ, संध्या ?

संध्या माके मुँहकी ओर देखने लगी पर कुछ बोली नहीं, और उठनेकी भी कोशिश उसने नहीं की। वह धीरेसे दादीसे पूछने लगी—पर, जिस चीजकी

इतनी इज्जत है,—जो इतने दिनोंसे इस तरह चली आ रही है, दादी, उसे क्या नष्ट होने देना अच्छा है ?

अब तो सासने भी बहूकी रूखीं बातोंपर विशेष ध्यान नहीं दिया। नातिनीके प्रश्नके उत्तरमें कहा—कोई बात बहुत दिनोंसे चली आ रही है, सिर्फ इसीसे वह अच्छी नहीं हो जाती, बेटी। सम्मानके साथ होनेपर भी नहीं। बीच-बीचमें उसे जाँच करके, उसपर विचार करके देख लेना चाहिए। जो ममतासे आँख मींचके रहना चाहता है, वही मरता है। मेरी सब बातें किसीसे कहनेकी नहीं हैं बिटिया, पर इसके लिए जीवन-भर मुझे दिन-रात ज़हरकी आगमें जलना पड़ा है,—

कहते कहते उनका कठ मानो भीतरकी अव्यक्त वेदनासे रुक गया।

संध्याने उनका हाथ अपने हाथमें लेते हुए आहिस्तेसे कहा—तो रहने दो दादी, उन सब बातोंको।

उन्होंने दूसरे हाथसे पोतीको अपनी छातीके पास खींचकर चुपचाप अपने आपको क्षण-भरमें सम्हाल लिया; उसके बाद, वे स्वाभाविक कंठसे धीरे धीरे कहने लगीं—संध्या, किसी समय देशके राजाने सिर्फ गुणोंको देख कर ही ब्राह्मणोंकी कुलीनताकी मर्यादा श्रेणीबद्ध की थी; उसके बाद, फिर ऐसे बुरे दिन भी आ गये कि जब इसी देशके राजाकी आज्ञासे उन्हींके वंशधरोंको सिर्फ दोषोंकी संख्या गिनकर ही मिलाया गया। जिस सम्मानकी प्रतिष्ठा ही त्रुटियों और अनाचारोंपर हुई थी, उसके भीतरके झूठको अगर जानतीं, बेटी, तो समझतीं कि, आज जिस चीज़ने तुम लोगोंको इतना मुग्ध कर रखा है, सिर्फ वही कुल नहीं है; बल्कि छोटी जात होनेसे जिन दूलोंकी अनाथाओंको तुमने निकाल दिया है उन्हें भी छोटा कहते हुए लज्जासे तुम्हारा सिर नीचा हो जाता।

जगद्धात्री क्रोध और विरक्तिको और न सह सकी, वह उठकर वहाँसे चली गई; पर संध्या चुपचाप वहीं बैठी रही। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो उसकी सत्यवादिनी संन्यासिनी दादीसे अपने भीतरका कोई एक अत्यन्त लज्जा और व्यथाका इतिहास किसी भी तरह प्रकट करते नहीं बनता; पर उसकी छाती फटी जा रही है। सहसा उसका ध्यान गया, कि उसके बाबाके बहु-विवाहके साथ इसका मानो कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कुछ देरतक चुपचाप रहकर उसने शरमाते हुए चुपकेसे पूछा—सचमुच ही क्या दादी, हम लोगोंके अन्दर बहुत ज्यादा अनाचार घुस गया है ? जिसके

बारेमें हमें इतना गर्व है, उसका क्या अधिकांश खोखला है ?

दादीने कहा—उसमें कितना खोखलापन है, इस बातको मुझसे ज्यादा और कोई नहीं जानता !

यह बात कहते कहते उसकी आँखें भर आईं, जो संध्याके अन्धकारमें भी संध्यासे छिपी न रहीं। दादी हाथसे आँखें पोंछती हुई कहने लगी—पर, अब बीच बीचमें मैं क्या सोचा करती हूँ, सो जानती है सन्ध्या ? मनुष्य मनुष्यमें यह जो भेद-भावकी चहार-दीवारी है, यह मनुष्यने ही अपने हाथसे बनाई है, यह भगवानका नियम हरगिज़ नहीं है। उनके प्रकट-मिलनके सिंहद्वारपर मनुष्य जितने ही काँटोंपर काँटे इकट्ठा करता जाता है, गुप्त गह्वरमें उसके अत्याचारोंके घेरेमें उतने ही अधिक छिद्र होते रहते हैं। तब उनमेंसे होकर समाजमें पाप और गन्दगी ही छिपे छिपे घुसती रहती है।

इसके बाद कुछ देरतक दोनों ही चुपचाप स्थिर होकर बैठी रहीं। संध्याको निश्चित रूपसे यह मालूम होने लगा कि इस बातके साथ उसके बाबाके बहु-विवाहका सचमुच ही कोई न कोई जघन्य सम्बन्ध है। इससे ज्यादा और कुछ समझमें न आनेपर भी उसे न जाने कैसा एक डर-सा लगने लगा।

दादीने कहा—जाओ बेटी, ठाकुरद्वारेका काम कर डालो, नहीं तो, तुम्हारी मा बहुत गुस्सा होगी।

संध्याने अनमने-भावसे जवाब दिया—वे खुद ही कर लेंगी, दादी।

इतना कहकर चटसे उसने उनका एक हाथ पकड़कर कहा—चलो न दादी, मेरे कमरेमें चलकर उस जमानेकी बातें करना, करोगी ?

यह कहते हुए वह एक तरहसे ज़बरदस्ती ही खींचकर उन्हें अपने कमरेकी ओर ले गई।

११

रात ज्यादा नहीं हुई थी,—मुश्किलसे पहर रात बीती होगी; परन्तु, जाड़ेके दिन थे, गाँवमें अभीसे सन्नाटा-सा मालूम हो रहा था। ज्ञानदाके शयन-कक्षमें एक कोनेपर मिट्टीका दिआ टिमटिमा रहा था। ज्ञानदा जमीनपर बैठी थी और उसके पास ही रासमणि बैठी हुई हाथ-मुँह हिला हिलाकर उसे समझा रही थी—बात मान ज्ञानदा, पागलपन मत कर। दवा दे गई है—उसे पी डाल।

फिर जैसा था सब वैसा ही हो जायगा, कोई जान भी न पायेगा ।

ज्ञानदाने आँसुओंसे भीगे हुए गलेसे कहा—ऐसी बात मुझसे तुम लोग कैसे कह रही हो, जीजी ? पापके ऊपर और इतना बड़ा पाप कैसे करूँ ? नरकमें भी तो फिर मुझे जगह न मिलेगी !

रासमणिने डाँटकर कहा—और इतने बड़े कुलके मुँहपर स्याही पोतकर तुम शायद स्वर्ग चली जाओगी, सोचती होगी ? जिसमें सबकी भलाई है, सो ही कर ज्ञानदा,—थुक्का-फजीहत करके इतने बड़े एक देशपूज्य आदमीका सिर नीचा मत करा दे ।

ज्ञानदाने हाथ जोड़कर रोते हुए कहा—यह दवा मैं किसी भी तरह नहीं पी सकती,—तुम लोग मुझे ज़हर देकर मार डालोगे, मैं समझ गई हूँ ।

रासमणिने अपने चेहरेको बहुत ही विकृत करके कहा—हाँ, तो कहती क्यों नहीं, मरनेके डरसे नहीं खाऊँगी ? झूठ-मूठको धर्म धर्म मत चिल्ला !

ज्ञानदाने कहा—पर, यह तो ज़हर है !

रासमणिने कहा—ज़हर है तो तेरा क्या ? तू तो मर नहीं रही है !

यह कहकर तुरन्त पलक मारनेके साथ ही वह अपने तीक्ष्ण स्वरको कोमल और करुण बनाकर बोली—पगली और किसे कहते हैं । हम लोग क्या तुझसे बुरी चीज़ खानेको कह सकते हैं बहन ? ऐसा भी कभी हो सकता है ? रासी बाम्हनीसे ऐसी बात कोई कह सकता है भला ? सो बात नहीं,—बहन, तकदीरके फेरसे जो दुश्मन तेरे पेटमें आ गया है,—उस आफत-बलाको टाल दे,—मामला ही कितनी देरका है ? उसके बाद जैसी पहले थी, वैसी फिर रह,—खा-पी, घूम फिर, तीर्थ-धर्म व्रत-उपास कर,—इस बातको कौन सुनेगा और कौन जानेगा ?

ज्ञानदा नीचेको निगाह किये चुपचाप स्थिर बैठी रही ।

रासमणिने पूछा—तो लानेको कह दूँ, बहन ?

ज्ञानदाने मुँह न उठाया, पर वह रो पड़ी; और बोली—नहीं, मैं वह किसी तरह नहीं पीऊँगी,—पीया तो फिर हरगिज़ न बचूँगी ।

रासमणिने बहुत गुस्सेके साथ कहा—यह तो तेरी बड़ी ज़बरदस्त, दुनियासे न्यारी, ज़िद्द है ज्ञानदा ? नहीं पीना चाहती, तो जा यहाँसे । मरद ठहरे, मान लो एक अकाज उनसे बन ही गया, तो क्या औरतको ऐसी ज़िद्द करनी चाहिए ? चटर्जी-भइया तो कहते हैं,—खैर जो होना था सो हो गया, उसे हम

पचास रुपये देते हैं, वह काशी-वृन्दावन कहीं चली जाय। इसके बाद तो फिर उन्हें कोई दोष नहीं दिया जा सकता, ज्ञानदा? रुपये भी कम नहीं हैं, एक साथ मुट्ठी-भर।

ज्ञानदाने कहा—मैं रुपये नहीं चाहती जीजी। रुपये लेकर मैं क्या करूँगी? मैं किसीको कहीं पहचानती नहीं—मैं कैसे किसके पास जाकर अपना यह मुँह दिखाऊँगी?

रासमणिने कहा—अब यह तुम्हारी तंग करनेकी बात नहीं तो और क्या है? कहावत है, चलो काशी-वृन्दावन! वहाँ इतने लोगोंकी गुज़र होती है, फिर तुम्हारी क्यों न होगी?

ज्ञानदा कुछ देर तक चुप रहकर बोली—रासू-जीजी, मैं सब जानती हूँ। कल उनका प्राणकृष्ण मुखर्जीकी लड़कीके साथ ब्याह होगा, सो भी जानती हूँ। आज, इसीलिए मुझे,—ज़हर पिलाकर हो, काशी भेजकर हो,—जैसे भी हो, घरसे निकालकर बाहर कर देना जरूरी हो गया है। पर भगवान!—

कहते-कहते वह फूट-फूटकर रो उठी और दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी—भगवान्! तुम्हारे चरणोंमें जब इतने लोगोंको जगह मिलती है, तो मुझे भी मिलेगी। लेकिन, बचपनसे मैंने कभी कोई पाप नहीं किया, शायद कभी करना भी न पड़ता,—पर, तुम तो सब जानते हो भगवान्! इस पापके दंडका सारा बोझा क्या निरुपाय होनेसे सिर्फ मेरे ही ऊपर लाद दोगे?

भगवानके नामसे तो रासमणिके क्रोधकी शायद सीमा न रही, उसने डाँटकर कहा—अरे मर परेको तू! मरी सरापती-कोसती क्यों है? दूध-पीती बच्ची है न! चोर मरता है सातको लेकर,—सो किस्सा तू कर रही है। तू शह न देती तो मरदकी हिम्मत कैसे होती भला? उनका क्या दोष? हाँ, कोई कहे तो ऐसा मरद कौन है—रासी बाम्हनीसे!

इसका अब क्या जवाब है! ज्ञानदा चुपचाप बैठी आँसू पोंछती रही। रासमणिने शान्त गलेसे कहा—अच्छा तो सुन, केवट-बहूकी दवा पीनेसे अगर तुझे डर मालूम होता है, तो प्रियनाथपर तो विश्वास होता है? न हो तो वही ऐसी कोई दवा दे जायगा, जिससे—

ज्ञानदा अवाक् होकर बोली—वे देंगे?

रासमणिने कहा—हूँः! देंगे क्यों नहीं! चटर्जी भइया कहेंगे तो देते ही

बनेगी। खबर भी दे दी गई है, अब आये ही समझो! तब नहीं करनेसे काम न चलेगा, कहे देती हूँ।

ज्ञानदा चुप बनी रही। रासमणि अधिकतर उत्साहजनक और भी कुछ कहना चाहती थी; पर, पास ही आँगनमें जूतोंकी आहट और प्रियनाथकी आवाज़ सुनाई दी।

"ओः, यहाँ एक बत्ती तक नहीं जलाई गई! सब लोग गये कहाँ?" कहते हुए खट-खट करके वे कमरेमें आ पहुँचे। बगलमें दबी हुई छोटी-बड़ी चार-पाँच किताबें तख्तपर और हाथका बाक्स नीचे रखते हुए बोले—आज कैसी तबीयत रही ज्ञानदा? अरे रे यह न होगा,—ठंड पड़ने लगी है, जमीनपर बैठना ठीक नहीं,—रेमिडी जरा बदल देनी होगी, खैर! अरे ये कौन? मौसीजी हैं क्या? कबकी आई हो? सब हैं तो अच्छी तरह? तुम्हारी नातिनीको कल रास्तेमें देखा था, उसकी तन्दुरुस्ती तो कुछ अच्छी नहीं मालूम हुई। भूख कैसी लगती है? कल घरपर लाकर जरा उसकी जीभ दिखाना मुझे। मरनेकी भी फुरसत नहीं, किधर-किधर देखूँ? जिधर निगाह न रखूँ, उधर ही—कल लड़कीका ब्याह है,—मौसी, कल लेकिन सबेरे ही पहुँचना होगा! लड़कीका ब्याह ठहरा, कल मेरा बाहर जाना तो हो ही नहीं सकता,—पर मरीजोंका क्या होगा, इसी सोचमें पड़ा हूँ। एक-आध हों, सो भी नहीं। ऐसा हो गया है कि प्रियनाथको छोड़कर विपिनको कोई बुलाना ही नहीं चाहता! उसकी भी फिर कैसे गुजर हो? दुःख भी तो होता है, कुछ भी हो, उसने भी तो थोड़ा-बहुत सीखा है। दो हाथ, देखूँ जरा। पंचू ग्वालेको सुना है कि, सर्दी बैठ गई है,—चटसे उसे भी देख आना है। लाओ हाथ देखूँ—

ज्ञानदाने हाथ नहीं निकाला, चुपचाप सिर झुकाये बैठी रही।

रासमणिने कहा—इस छोकरीकी बीमारी तुमने क्या पाई बताओ तो बेटा?

प्रियनाथने उसके मुँहकी तरफ देखकर कहा—डिस्—बदहज़मी,—अजीर्ण,—अम्ल! अम्ल!

परन्तु प्रश्नकारिणीका सिर हिलाना देखकर उनकी डाक्टरी विद्या बिलकुल बुझने-सी लगी। व्यग्र होकर बोले—क्यों क्यों? नहीं क्यों? विपिन आया होगा? क्या बोला वह? कहाँ है देखूँ, क्या दवा दे गया है?

रासमणिके मुँहपर आया हुआ सच-झूठ, उग्र-कोमल, भला-बुरा, कुछ भी नहीं

रुकता, भूमिका बनाकर बात कहनेकी जरूरत उसे शायद ही कभी पड़ती हो,—मगर फिर भी, आज उसे सावधान होना पड़ा। सिर हिलाकर बोली—नहीं बेटा, न विपिन डाक्टरको बुलाया, न परान चटर्जीको,–तुम्हारे आगे वे हैं ही क्या? डाक्टरी वे क्या जानें? चटर्जी-भइया तो इस बातको डंकेकी चोट सबसे कहा करते हैं!

"कहेंगे नहीं? यह तो सभी कहेंगे! विपिनको तो मैं दस साल सिखा सकता हूँ। तबकी बार उसने पॉलसेटिला देकर—"

मौसीने कहा—क्या बताऊँ, बेटा, छोरी ऐसा करम कर बैठी है कि अपने आदमीके सिवा गैरको बुलानेसे भी रहे!

प्रियनाथ गरम होकर बोला—मेरे रहते गैर घुसेगा इस घरमें डाक्टरी करने! पर ऐसा है न मौसी, इस बीमारीमें जरा समय लगता है,—पर यह भी कहे देता हूँ, दोसे ज्यादा रेमिडी भी मैं नहीं देनेका। क्यों ज्ञानदा, जी मचलाना मेरी दो ही बूँदोंसे बन्द हो गया या नहीं? ठीक ठीक बताना?

ज्ञानदाका झुका हुआ माथा मानो बिलकुल ही जमीनमें समा जाने लगा। उसकी तरफसे रासमणिने कहा—तुम्हारे सिवा यह और किसीका एतबार नहीं करती बेटा. तुम्हारी दवा तो मानो इसके लिए धन्वन्तरी है! मगर बीमारी तो जो तुम समझते हो, सो नहीं है प्रियनाथ। तकदीरके फेरसे अभागीकी बीमारी कुछ उल्टी है!

प्रियनाथने हाथ उठाकर कहा—उल्टी नहीं मौसी, उल्टी नहीं। विपिनके हाथ पड़ती तो ठीक वैसे ही हो जाती, पर अब कोई डर नहीं, मैं हूँ प्रियनाथ!

रासमणिने माथेपर हाथ दे मारा और कहा—तुम बचा दो, तो सचमुच ही डरकी कोई बात नहीं, मगर सत्यानासिनी इधर जो सत्यानास कर बैठी है अब इसका कोई दवाई देकर उद्धार करो,नहीं तो कुलमें कालिख लगनेकी नौबत आ पहुँची है, बेटा!

परंतु, डाक्टरके चेहरेकी ओर देखकर मौसीको जब यह महसूस हुआ कि इतने बड़े अनुभवी डाक्टरके सामने भी उसकी अन्तिम बात स्पष्टतया प्रकट न हुई तो वह उसे प्रकट करनेके लिए प्रियनाथको एक कोनेमें ले गई, और वहाँ उसने उसके कानमें कुछ कहा। सुनते ही प्रियनाथ चौंक पड़े—कहती क्या हो मौसी? ज्ञानदा—?

मौसीने कहा—क्या बताऊँ बेटा, भाग्यके लेखको कौन मिटा सकता है, बताओ? अब दो कोई दवाई, जिससे गोलोक चटर्जीका ऊँचा सिर नीचा न

होने पावे। देश-भरके मस्तक हैं, समाजके शिरोमणि। मरद ठहरे,—उनका क्या दोष है, बेटा ? पर, उनके घरमें आकर इस छोरीको क्या सूझी जो इतनी निर्लज्जता की, बताओ भला ?

प्रियनाथका चेहरा फक पड़ गया। एक बार उन्होंने ज्ञानदाका मुँह देखनेकी कोशिश की, उसके बाद धीरे धीरे कहा—तुम, बल्कि, विपिन डाक्टरको खबर भेजो मौसी, ये सब दवाएँ मेरे पास नही रहतीं।

इतना कहकर वे झुकके अपना बॉक्स और किताबें उठाने लगे।

रासमणिने आश्चर्यके साथ कहा—कह क्या रहे हो तुम, प्रियनाथ, यह बात क्या और पाँच कानों तक पहुँचाई जा सकती है ? चाहे कुछ भी हो, तुम अपने आदमी हो, और विपिन डाक्टर गैर है,—सूद्र है;—ब्राह्मणकी इज्जत क्या उसके आगे उघाड़ी की जा सकती है ?

परन्तु, प्रियनाथके जवाब देनेसे पहले ही सहसा दरवाजा खोलकर चुपकेसे गोलोक भीतर आ पहुँचे, और प्रियनाथका बायाँ हाथ दबाकर विनतीके स्वरमें बोले—ज़हरके डरसे वह और किसीकी दवा पीना नहीं चाहती, बेटा, नहीं तो तुम्हें तकलीफ न देता। इस विपत्तिसे तुम्हें उद्धार करना ही पड़ेगा, प्रियनाथ !

प्रियनाथने हाथ छुड़ाकर—नहीं, नहीं, इन सब गन्दे कामोंमें मैं नहीं पड़ता,—मैं मरीज देखता हूँ, रेमिडी सिलेक्ट करता हूँ, बस। विपिन-फिपिनको बुलाकर सलाह कीजिए, इन सब मामलोंमें मैं कुछ जानता-आनता नहीं !

इतना कहकर फिर एक बार उन्होंने किताबें बगलमें दबानेकी तैयारी की।

गोलोक फिर उनका हाथ अपने हाथमें लेकर लगभग रोनेके स्वरमें कहने लगे—प्रियनाथ, बूढ़े आदमीकी बात रख दे, बेटा। रिश्तेमें मैं तुम्हारा ससुर लगता हूँ,—तुम मेरी बात न रखोगे यह जानता, तो मैं तुमसे हरगिज़ न कहता ! दुहाई है बेटा, कोई उपाय कर दो,—तुम्हारी ठोड़ी छूता हूँ—

प्रियनाथने फिर अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—रिश्तेमें ससुर लगते हैं, सो क्या आपके कहनेसे मैं जीव-हत्या करूँ ? आप तो अच्छे आदमी मालूम होते हैं, परलोकमें क्या जवाब दूँगा ?

गोलोक दरवाजे पास खिसक गये। उनके चहरेका रुख, आँखोंका भाव, गलेका स्वर,—सब कुछ मानो अद्भुत जादू-बलसे पल-भरमें परिवर्तित हो गया। कर्कश कंठसे पूछ उठे—इतनी रातको तुम एक शरीफके घरके अन्दर घुसे क्यों ?

यहाँ तुम किस कामसे आये हो ?

प्रश्न सुनकर प्रियनाथ सिर्फ विस्मित ही नहीं हुए, बल्कि हतबुद्धि हो गये, बोले—किस कामसे ? वाह,—यह खूब रहा ! इलाजके लिए किसने बुलवाया था ? वाह—

गोलोक एकाएक चीत्कार कर उठे—वाह ! इलाज तू क्या जानता है रे, हरामजादे लुच्चे ? किसने तुझे बुलाया था ? कहाँसे तू भीतर घुसा ? पिछवाड़ेका दरवाजा किसने तुझे खोल दिया ?

फिर ज्ञानदाकी ओर घूमकर बोले—हरामजादी ! इसीसे अन्धा ससुर रो-रोकर चला गया और तू गई नहीं ! बूढ़ी सास मर रही है,—मैंने खुद इतना कहा, ज्ञानदा, जाओ, इस समय उनकी सेवा करो। किसी भी तरह गई ही नहीं, सो क्या इसी लिए ? आधी रातको इलाज करानेके लिए ? ठहर हरामजादी, कल ही अगर, तेरा सिर मुड़ाकर गाँवके बाहर न निकलवा दिया, तो मेरा नाम गोलोक चटर्जी नहीं !

ज्ञानदाके माथेपर कपड़ा नहीं,—कब खिसक गया, उसे मालूम ही नहीं हुआ,—मुँहमें बात नहीं,—सिर्फ दोनों आँखें फाड़कर वह जैसे पत्थर हो रही।

गोलोकने रासमणिकी ओर देखकर कहा—रासू, अपनी आँखोंसे देख तो लिया इन लोगोंका करम ? मैं दस गाँवोंकी समाजका सरपंच हूँ, मेरे घरपर यह पाप ? यह तो शेरके घर घोगेका * बासा हो गया !

रासमणि खुद भी अब तक सिकुड़ी-सी बैठी थी, बोली—हो ही तो गया, भइया !

गोलोकने कहा—लेकिन, तू गवाह रही।

रासमणिने कहा—रही क्यों नहीं ! मैंने कहा, रातको जरा हाथ खाली हुए हैं,—देख आऊँ ज्ञानदा कैसे है। यहाँ देखा तो खूब मजेसे दोनों बैठे बैठे हँसी-मज़ाक गप-शप कर रहे हैं !

ज्ञानदाने इसका भी कोई उतर नहीं दिया। वह उसी तरह फटी हुई आँखोंसे पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठी रही।

प्रियनाथ बेचारा आच्छन्न अभिभूत-सा खड़ा था, गोलोकने झपट्टा मारकर उसके हाथसे किताबें छीन लीं, और गलेमें जोरका एक धक्का मारकर कहा—निकल

---

* कुत्तेकी जातिका एक वन्य जन्तु।

बदमाश पाजी लुच्चे यहाँसे! क्या कहूँ तुझसे, रामतनु बनर्जीका दामाद है, नहीं तो मारे जूतोंके तुझे अधमरा करके थानेमें भिजवा देता!

इतना कहकर फिर एक धक्का दिया, और शोर-गुल सुनकर नौकर-चाकर जो वरंडेमें आकर जमा हो गये थे, उनके बीचमेंसे होकर बार-बार धकेलते-ठेलते हुए उसे बाहर कर दिया।

प्रियनाथके मुँहसे वही एक बात निकल रही थी—वाह! यह खूब रहा! नौकर-चाकर दाई-महरी सब साथ-साथ बाहर चल दिये, और रासमणि भी उन्हींके पीछे पीछे जाकर चुपकेसे खिसक गई।

रह गई अकेली ज्ञानदा। वह उसी तरह निश्चल, उसी तरह वाक्यहीन, उसी तरह अचेतन मूर्तिके समान बैठी रही।

* * * *

१२

आज दिन-भर कभी पाससे और कभी दूरसे शहनाईका करुण राग सुनाई देता रहा है। अगहनके आजके दिनके सिवा फिर बहुत दिनों तक कोई सहालग नहीं; इसीसे, शायद इस छोटे-से गाँवमें भी आज चार-पाँच घरोंमें ब्याहकी तैयारियाँ चल रही हैं। संध्याका भी आज ब्याह है।

अरुण अब तक नाना कारणोंसे अपने मकान और जन्म-भूमि त्यागनेके संकल्पको कार्य-रूपमें परिणत नहीं कर सका। पहलेकी तरह उसने अपना काम-काज करना भी फिर शुरू कर दिया है। बाहरके उसके जीवनमें कोई परिवर्तन नजर नहीं आता; किन्तु, जरा गौरसे देखनेसे ही पता चल जाता है कि अपने देशके प्रति उसका ममता-बोध बिलकुल ही जाता रहा है। जिन सब हितकारी अनुष्ठानोंके साथ उसका अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध था, वे सब मानो उतनी ही दूर उससे हट गये हैं। गाँवमें वह 'छिका हुआ' समझा जाता है, इसीसे इतने घरोंमें ब्याह होते हुए भी कहींसे उसके लिए न्योता नहीं था,—सामाजिकता रखनेके लिए उसे कहीं जाना नहीं था,—आज सभी घरोंके दरवाजे उसके लिए बन्द थे।

संध्याके बादसे ही वह अपने दुमंजिले-वाले पढ़नेके कमरेमें चुपचाप अकेला बैठा है। जाड़ोंकी ठंडी ठंडी हवा चल रही है। परन्तु, फिर भी घरके दरवाजे-जंगले बन्द नहीं किये गये हैं,—सबके सब खुले पड़े हैं। निर्मेघ निर्मल आकाश एक

छोरसे लेकर दूसरे छोर तक त्रयोदशीके चन्द्रमाकी चाँदनीमें बहा जा रहा है,—उसीका एक टुकड़ा पीछेकी खुली खिड़कीमेंसे भीतर आकर उसके पैरोंपर फैल गया है। उसके सामनेवाले खुले बरामदेके पास ही, एक छोटे नारियलके पेड़की चोटीपर, पत्तों-पत्तोंपर चाँदनीका उजेला पड़कर झकमक झकमक कर रहा है। वह उसीकी तरफ अर्द्ध-निद्रातुरकी भाँति देखता हुआ क्या क्या सोच रहा है, इसका कोई ठिकाना नहीं। रसोइया भोजनके लिए कहने आया तो उसने उसे 'भूख नहीं' कहकर बिदा कर दिया, और दीवारपर अँधेरेमें टँगी हुई घड़ीने ग्यारह बजाकर उसके सोनेका समय बता दिया, तो भी आज उसे वहाँसे हिलनेकी इच्छा न हुई,—जैसे बैठा था; वैसे ही चुपकी साधे स्थिर बैठा रहा।

सहसा उसके कानोंमें सदर-दरवाजेपर कराघातका शब्द और दूसरे ही क्षण उसके खुलनेका शब्द भी सुनाई पड़ा। एक बार इच्छा हुई कि पुकारकर कारण पूछे; क्योंकि, गँवई-गाँवमें इतनी रात बीते कोई किसीके घर नहीं जाता; परन्तु, उद्यमके अभावसे उससे कुछ नहीं पूछा गया।

परन्तु, ज्यादा देरतक सोचना न पड़ा। कुछ ही क्षण बाद दरवाजेके पास रेशमी साड़ीका प्रबल खस-खस शब्द सुनाई दिया और उसके साथ ही साथ कोई स्त्री आँधीकी तरह घरमें घुसकर उसके पैरोंके पास औंधी होकर आ पड़ी।

अरुण घबराकर झटपट खड़ा हो गया, देखा—चन्द्रमाकी चाँदनीमें उसके रंगीन पट्ट-वस्त्र चमक रहे हैं। यह कौन है, इस बातका पल-भरमें अनुभव करके मारे भय और आश्चर्यके उसी क्षण उसकी छातीके भीतरका खून सूख गया। वह क्या कहे, क्या करे, कुछ भी न सोच सका।

परन्तु, उसके लिए भी समय न रहा। एक भयानक मर्मान्तक दबे हुए रोनेने अकस्मात् घरकी हवा, घरके अन्धकार और म्लान प्रकाश, घरमें जो कुछ था,—सबको, एक साथ पल-भरमें चीरकर खण्ड-खण्ड कर दिया।

दो-तीन मिनट तक हतबुद्धि-सा चुपचाप रहकर अरुणने जरा हटकर खड़े होकर पूछा—बात क्या है संध्या?

संध्याने मुँह उठाकर देखा। ब्याहकी रंगीन रेशमी पोशाकके साथ साथ उसके सारे अंगोंके गहने चाँदनीमें चमचमाने लगे, सुन्दर ललाटपर चन्द्र-रश्मि पड़नेसे चन्दनकी पत्र-लेखा दीप्त हो उठी, और उसीके जरा नीचे आँसू-भरी बड़ी बड़ी दो आँखें झलमलाने लगीं। नारीका ऐसा रूप अरुणने पहले कभी नहीं देखा था,

मानो वह बिलकुल मुग्ध हो गया।

संध्याने कहा—अरुण-भइया, मैं ब्याहकी पाटपरसे भाग आई हूँ तुम्हें ले चलनेके लिए। आज मुझे न लज्जा रही है, न भय—मान-अपमानका भी ध्यान नहीं रहा,—तुम्हारे सिवा आज दुनियामें मेरा और कोई नहीं है,—तुम चलो।

" कहाँ जाऊँ ? "

"जहाँसे अभी तुरन्त ही एक आदमी उठकर चला गया है,—उसी आसनपर।"

अरुण मन ही मन अत्यन्त आहत हुआ। माजरा क्या है, वह समझ गया। किसी बातपर झगड़ा हो जानेपर वर-पक्षके लोग ज़बरदस्ती वरको उठा ले गये हैं। हिन्दू समाजमें ऐसी दुर्घटनाओंकी कमी नहीं,—इसी लिए, उस दूसरेके परित्यक्त आसनपर अकस्मात् उसकी बुलाहट हुई है। जैसे भी हो, आज संध्याका ब्याह होना ही चाहिए।

परन्तु, स्वयं चोट खानेपर भी अरुण बदलेमें चोट न पहुँचा सका; बल्कि, सस्नेह भर्त्सनाके कंठसे बोला— छिः—तुम्हारा खुद आना उचित नहीं हुआ। ऐसा तो अकसर हुआ ही करता है,—तुम्हारे बाबूजी या और कोई आ सकता था।

" बाबूजी ? बाबूजी तो डरके मारे न जाने कहाँ छिप गये हैं। मा तालाबमें कूद पड़ी थीं, उन्हें पकड़-पकड़ाकर निकाला गया है। मै उसी समय तुम्हारे पास दौड़ी चली आई। ओफ्,—इतना बड़ा सत्यानास क्या दुनियामें और किसीका कभी हुआ है ? हम लोग जीयेंगे किस तरह ?

उसके अन्तिम शब्दोंसे अरुणको फिर चोट पहुँची। बोला—पर मेरे द्वारा तो तुम लोगोंके कुलकी रक्षा होगी नहीं संध्या, क्योंकि मैं तो बहुत नीचा बाम्हन हूँ। देशमें और भी अनेक कुलीन ब्राह्मण हैं,—तुम्हारे बाबूजी शायद उन्हींकी खोजमें गये होंगे।

संध्याने रोते हुए कहा— नहीं नहीं, नहीं अरुण-भइया,—वे डरके मारे भाग गये हैं। मुझे अब कोई भी न लेगा—कोई नहीं ब्याहेगा। सिर्फ़ तुम मुझे प्यार करते हो,—सिर्फ़ तुम्ही मेरी हमेशाकी इज्जत बचा सकते हो; बचाओ !

उसकी भयानक उच्छृंखल अवस्थासे अरुणको दुःख हुआ, हाथ पकड़कर उठानेकी कोशिश करते ही संध्याने बाधा देते हुए कहा—नहीं, मैं नहीं उठूँगी,—जब तक बस चलेगा, तुम्हारे पैरोंपर ही पड़ी रहूँगी। कुलकी रक्षा न होगी, कह रहे थे ? सो किसका कुल अरुण भइया ? मैं तो ब्राह्मणकी लड़की नहीं हूँ—मैं नाईकी

लड़की हूँ। सो भी अच्छी लड़की नहीं। अब मेरे हाथका छुआ पानी कोई नहीं पीयेगा। ओफ्! इतनी बड़ी सजा मुझे क्यों दी भगवान्! मैंने तुम्हारा क्या किया था!

अरुण चौंक पड़ा। उसे सहसा ऐसा मालूम हुआ, संध्या शायद होश-हवासमें नहीं है। हो न हो, यह सब उसके गरम मस्तिष्ककी भयानक और विकृत कल्पना है। हो सकता है कि यह सब कुछ भी न हुआ हो,—वह यों ही भाग आई है,—घरपर उसके अब तक उथल-पुथल मच गई होगी। उसे शान्त करके घर भेजनेके अभिप्रायसे अरुणने स्नेहके साथ उसके सिरपर हाथ रखकर धीरे धीरे कहा—अच्छा, चलो संध्या, मैं तुम्हें तुम्हारे घर ले चलूँ।

संध्याने घुटने टेककर प्रणाम करके उसके पाँवकी धूल माथेसे लगाकर कहा—चलो। तुम चलोगे, इस बातको मैं जानती थी। लेकिन मेरी सारी बातें सुन लो तब चलो,—नहीं तो मालूम नहीं, तुम भी शायद,—क्या कहा था तुमसे एक दिन? नीचे ब्राह्मण न? आज शायद, सिर्फ उसी पापसे ही प्रमाणित हो गया कि मैं ब्राह्मणकी लड़की नहीं हूँ! उफ्, जीऊँगी कैसे मैं अरुण-भइया?

उसकी मानसिक वेदनाका परिमाण देखकर अरुणका मन फिर दुबिधामें पड़ गया। उसे मालूम हुआ, हो सकता है कि वास्तवमें ही कुछ हुआ है,—शायद यह सच्ची घटनाका ही वर्णन कर रही है। आहिस्तेसे उसने पूछा—किसने यह बात प्रमाणित की?

"किसने? गोलोक चटर्जीने। हाँ, उसीने। उसने मुझसे क्या कहा था, जानते हो? नहीं जानते? अच्छा खैर, जाने दो उस बातको। मा मुझे सम्प्रदान करने बैठीं थीं, मेरी दादी चुपचाप खड़ी थीं। इतनेमें मृत्युंजय घटक दो आदमियोंको साथ लेकर वहीं आ पहुँचा। एक आदमीने दादीको बुलाकर कहा, 'तारा जीजी, हम लोगोंको पहचानती हो?' एक आदमीने मेरी माको दिखाकर कहा, 'तुमने लड़केका ब्याह करके इस ब्राह्मणकी लड़कीकी जात तो मारी ही थी,—अब फिर नातिनीका ब्याह करके इन लोगोंकी जात क्यों मार रही हो?' उसके बाद, बाबूजीकी तरफ उँगली उठाकर, सब लोगोंसे कहा, 'तुम सब कोई सुन लो, इसे तुम परम कुलीन प्रियनाथ मुखर्जी समझते हो,—पर यह ब्राह्मण नहीं है, यह हीरू नाईका लड़का है!'

अरुण कहने लगा—यह सब तुम क्या बके जा रही हो सन्ध्या?

परन्तु, संध्याने शायद इस प्रश्नको सुना ही नहीं,—वह अपनी बातका सिल-

सिला जारी रखे कहती ही गई—मृत्युंजय घटकने गंगाजलका घड़ा दादीके सामने रखकर पूछा,—बताइए यह बात सच है कि नहीं ? कहिए, यह किसका लड़का है ? मुकुन्द मुखर्जीका है, या हीरू नाईका ? बताइए ?—अरुण-भइया, मेरी संन्यासिनी दादी सिर झुकाये बैठी रहीं, किसी भी तरह झूठ न बोल सकीं।—ओ जी ! यह सच है, यह सत्य है, यह भयंकर सत्य है ! सचमुच ही हम लोगोंको तुम जैसा समझते थे, वैसे हम नहीं हैं ! तुम्हारी यह संध्या ब्राह्मणकी लड़की नहीं है !

अरुणके मनमें अब संशयका लेश भी बाकी न रहा, वह वज्राहतकी भाँति सिर्फ स्तब्ध होकर खड़ा रहा।

संध्याने कहा—एक आदमीने तब सारी घटना कह सुनाई। वह उनके गाँवका आदमी था। कहा कि आठ सालकी उमरमें दादीका ब्याह हुआ था, उसके बाद चौदह-पन्द्रह साल बाद एक आदमी आया और अपनेको मुकुन्द मुखर्जी बतलाकर घरमें ठहर गया। पाँच रुपया और एक कपड़ा भेंटमें लेकर और दो दिन रहकर वह चला गया। उफ्,—भगवान !

अरुण उसी तरह निर्वाक् और निश्चल होकर बैठा रहा।

संध्याने कहा—अभी मैं क्या कह रही थी, अरुण-भइया ? हाँ हाँ,—याद आ गया। उसके बादसे ही वह आदमी अक्सर आने-जाने लगा। दादी बहुत सुन्दरी थीं, उसके बाद उसने दक्षिणा लेना छोड़ दिया। एक दिन जब अचानक सब भेद खुल गया, तब बाबूजीका जन्म हो चुका था ! उफ्,—अगर मैं मा होती, तो गला दबाकर उसी वक्त मार डालती;—बड़ा न होने देती। हाँ, क्या कह रही थी मैं ?

अरुणने अस्फुट स्वरमें कहा—भेद खुल गया।

संध्या कहने लगी—हाँ हाँ, ठीक है। भेद खुल गया। तब उसने क्या कबूल किया, जानते हो ? कहा कि यह कुकर्म उसने अपनी इच्छासे नहीं किया, बल्कि अपने मालिक मुकुन्द मुखर्जीकी आज्ञासे किया है। एक तो वे वैसे ही बूढ़े आदमी, उसपर पाँच-सात वर्षसे गठियाके मारे बेजार, इसलिए उन्होंने अपरिचित स्त्रियोंसे रुपये वसूल करनेका भार देकर हीरू नाईसे कहा कि तू ब्राह्मणका परिचय कंठस्थ कर डाल, एक जनेऊ बना रख, अबसे जो कुछ रोजगार करके लायेगा, उसमेंसे तुझे आधा हिस्सा मिला करेगा !

अरुण चौंक उठा, बोला—ऐसा काम उसने और भी कहीं किया था क्या ?

संध्याने कहा—हाँ, और भी दस बारह जगहसे वह इसी तरह अपने मालिकके

लिए रोज़गार कर लाया करता था ! उसने और भी क्या कहा था, जानते हो ? कहा था कि यह काम कुछ नया नहीं है, और सिर्फ उसीके मालिक ऐसा करते हों, सो बात भी नहीं है,—ऐसे बहुत-से कुलीन ब्राह्मण हैं जो दूरके मामलोंमें औरोंकी साझेदारीसे काम चलाते हैं !

अरुण मारे गुस्सेके गरजकर बोला—सच ही होगा ! नहीं तो, ब्राह्मण-कुलमें गोलोक जैसे कसाई क्यों पैदा होते ? और मजा यह कि यही लोग सारे हिन्दू-समाजके माथेपर बैठे हुए हैं ।—हाँ, फिर उसके बाद ?

" उसके बाद दादी मेरे बाबूजीको लेकर काशी चली गईं । तबसे वे संन्यासिनी हैं,—तबसे कहीं भी उन्होंने अपना मुँह नहीं दिखाया । "

संध्या फिर कहने लगी—हीरूने शायद पूछा भी था कि,—पंडितजी, परलोकमें मैं क्या जवाब दूँगा ? उसके मालिकने कहा था,—वह पाप मेरे ऊपर है, उसका जवाब मैं दे दूँगा । हीरूने पूछा था,—और उन बेचारियोंकी गति क्या होगी, पंडितजी ?

" पंडितजीने हँसते हुए ही जवाब दिया था, ' वे मेरी स्त्रियाँ हैं, तेरी नहीं । उसका तुझे इतना दर्द क्यों ? जिन्हें आँखोंसे कभी देखा नहीं, और न देखूँगा, उनकी गति क्या होगी, क्या न होगी, इसकी चिन्ता करनेकी क्या तो मुझे जरूरत और क्या तुझे ! हमें चिन्ता है रुपयोंकी ! ' अरुण-भइया, इसीसे उस दिन मेरी दादीने तुम्हारी चर्चा आनेपर रोकर कहा था,—' संध्या, जातमें कौन छोटा है और कौन बड़ा, इस बातको सिर्फ भगवान ही जानते हैं,—मनुष्यको तो कभी किसीको हीन जातिका समझकर घृणा करनी ही न चाहिए । पर, तब मैंने नहीं सोचा था कि उसके मानी, आज,—इस तरह, समझने होंगे ! लेकिन अब रात ज्यादा हुई जा रही है,—मुझे लेकर तुम्हें कभी दुःख न उठाना पड़ेगा अरुण-भइया, तुम्हारे महत्त्व, तुम्हारे त्यागको मैं जीवन-भर न भूलूँगी ।

इतना कहकर वह निर्निमेष दृष्टिसे देखने लगी ।

अरुणने अनिश्चित कंठसे संकोचके साथ कहा—पर, अभी तो तुम्हारे साथ मैं जा नहीं सकता, संध्या ।

संध्याने चकित होकर कहा—क्यों ? तुम संग न चलोगे तो मैं खड़ी कहाँ होऊँगी ? मैं जीऊंगी कैसे ?

इस आकुल प्रश्नका उत्तर अरुणको सहसा ढूँढ़े न मिला; उसके बाद, अत्यन्त

धीरेसे वह बोला—आज मुझे क्षमा करो संध्या,—मुझे जरा सोच लेने दो।

" सोचोगे ? " यह कहकर संध्या अवाक् होकर एकटक अरुणकी ओर देखती हुई, अन्धकारमें, जहाँ तक देख सकी, उसका चेहरा देखनेकी कोशिश करने लगी। उसके बाद एक गहरी साँस लेकर धीरेसे उठकर बोली—अच्छा, सोचो। जरा नहीं, सोचनेका समय तो शायद जीवन-भर पाओगे। इतने दिनों तक मैंने भी सोचा है,—दिन-रात सोचती ही रही हूँ! जब अपने निकट मैं तुम्हें बहुत छोटा समझनेमें हिचकी नहीं थी, तभीसे यह बात सोचती रही हूँ! आज अब तुम्हारे सोचनेकी पारी आई है। अच्छा, तो चली—

इतना कहकर ज्यों ही वह उठके खड़ी हुई, त्यों ही उसके अंगका सुदीर्घ अंचल स्खलित होकर नीचे गिर गया। अब उसे उठाकर धीरेसे यथास्थान रखते समय उसकी निगाह अपने ऊपर पड़ गई। वह अकस्मात् सिहरकर बोली—भगवान्! ब्याहकी यह रंगीन पोशाक, शरीरके ये गहने, माथेका यह वधू-चन्दन,—यह सब पहनते समय ये सब बातें किसने सोचीं थीं!

कहते कहते उसका कण्ठ रुँध आया। उसी रुँधे हुए गलेसे वह बोली—मैं बिदा होती हूँ, अरुण-भइया!

इतना कहकर फिर एक बार प्रणाम करके वह चुपचाप बाहर निकल गई।

अरुण निश्चल होकर खड़ा रहा। परन्तु ज्यों ही संध्या उसकी दृष्टिसे अन्तर्हित हुई, त्यों ही सहसा मानो उसकी आँखें खुल गई, और वह व्यग्र व्याकुल कंठसे नौकरको बार-बार बुलाकर कहने लगा—शिबू, जा जा, साथ जा!

कहते कहते वह स्वयं ही उसके पीछे पीछे दौड़ा चला गया।

१३

बायें हाथमें दिआ लिये हुए प्रियनाथ बॉक्समेंसे कुछ चीजें निकाल-निकाल कर एक कपड़ेमें रख रहे थे, इतनेमें सहसा पीछेसे आवाज़ सुनाई दी—' बाबूजी ! '

वे अपना काम छिपे तौरसे कर रहे थे, हड़बड़ाकर हाथका दिया नीचे रखकर खड़े हो गये, बोले— कौन संध्या ? अभी ले बेटी, जा ही रहा हूँ,—अब देर नहीं है—

संध्याने बड़ी मुश्किलसे आँसू रोकते हुए कहा—क्या कर रहे थे बाबूजी ?

प्रियनाथ घबड़ाकर बोले—मैं ? नहीं तो,—कुछ भी तो नहीं कर रहा था, बेटी।

उस कपड़ेको दिखाकर संध्याने पूछा—उसमें क्या है बाबूजी ?—क्या रख रहे थे ?

भेद खुल जानेसे प्रियनाथ अत्यन्त लज्जित हो उठे; कुछ कुछ बिनतीके स्वरमें कहने लगे—थोड़ी-सी,—ज्यादा नहीं बेटी, रेमिडी साथमें ले रहा था,—और उस 'मेटिरिया मेडिका' को,—बड़ी नहीं छोटी,—फट-उट भी गई है,—अनजान जगह होगी,—जो हो, थोड़ी बहुत प्रैक्टिस तो करनी ही होगी ? इसीसे सोचा कि—

"मा क्या तुम्हें इतना भी देना नहीं चाहतीं, बाबूजी ?"

प्रियनाथने अनिश्चित-भावसे सिर हिलाकर क्या प्रकट करना चाहा, कुछ समझमें न आया।

"तुम कहाँ प्रैक्टिस करोगे बाबूजी ?"

"वृन्दावनमें। वहाँ कितने ही यात्री आया जाया करते हैं—उन्हें दवा देनेसे क्या महीनेमें चार-पाँच रुपये भी न मिलेंगे, संध्या ? उसीसे मेरी अच्छी तरह गुजर हो जायगी।"

"सो खूब मिल जायँगे बाबूजी, तुम और भी ज्यादा पैदा कर लोगे। मगर, वहाँ तो तुम किसीको जानते ही नहीं। परसों जब रात बीते दादी काशी गई थीं, तब उनके साथ तुम क्यों नहीं चले गये बाबूजी ?"

"माके साथ ? काशी ? नहीं बेटी, अपने साथ मैं और किसीको भी नहीं लपेटना चाहता। मेरे कारण तुम लोगोंने बहुत दुःख पाया है, अब मैं किसीको दुःख न दूँगा। जितने दिन जीऊँगा, उस अनजान जगहमें अकेला ही रहूँगा।"

संध्याने पिताकी छातीके पास आकर उनके दोनों हाथ अपने हाथोंमें लेकर कहा—पर, मैं तो तुम्हें अकेला नहीं रहने दूँगी बाबूजी, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।

प्रियनाथने धीरे धीरे अपने हाथ छुड़ा लिये और कन्याके सिरपर हाथ रखकर हँसते हुए कहा—अरी पगली, सो भी कहीं होता है। मेरे साथ कहाँ जायगी, बिटिया ? तू अपनी माके पास रह, उसने भी बहुत दुःख उठाये हैं। और मेरा नाम लेकर जो माँगने आवें, उन्हें तू दवा देना। और सुन संध्या, मेरी किताबें

अगर तुम्हारी मा दे, तो विपिनको दे देना । वह बेचारा गरीब है, किताबें न खरीद सकनेके कारण बेचारा कुछ सीख नहीं पाता ।

संध्याने सिर हिलाकर कहा—नहीं बाबूजी, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी ही । यह देखो न, अपने रोजके पहननेके कपड़े मैंने अँगौछेमें बाँध लिये हैं ।

यह कहकर उसने आँचलके भीतरसे एक छोटी-सी पोटली निकालकर दिखाई ।

प्रियनाथ कभी ज्यादा प्रतिवाद न कर सकते थे, वे राजी होकर बोले—अच्छा तो चल । पर, तेरी माको बहुत दुःख होगा, संध्या !

कल सबके सामने, समाजके सोलह-आने लोगोंके सामने, पिताकी दुर्गति उसने अपनी आँखों देखी है । जगद्धात्रीका अपना मकान था, इसीसे इतना संभव हो सका,—यह अपमान संध्याकी हड्डी-हड्डीमें चुभ चुका था । परन्तु प्रत्युत्तरमें उसने उस बातका कोई उल्लेख नहीं किया, वह बार-बार सिर हिलाकर सिर्फ यही कहने लगी—मैं जाऊँगी ही । मैं साथ न रहूँगी तो तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा ? कौन तुम्हें बनाकर खिलायेगा ?

यह कहकर उसने झटपट बाबूजीकी दवा और किताबें कपड़ेमें बाँध लीं, और उनका हाथ पकड़कर कहा—हम लोग इसी समय निकल चलें, नहीं तो, बारह बजेकी गाड़ी शायद न मिल सकेगी ।

माके बन्द दरवाजेकी चौखटपर संध्याने माथा टेककर प्रणाम करके कहा—मा, हम लोग जा रहे हैं । सिर्फ पहननेकी दो धोतियोंके सिवा मैंने तुम्हारा और कुछ भी नहीं लिया है ।

यह कहते कहते वह रो पड़ी । परन्तु, भीतरसे कोई जवाब नहीं आया । झटपट आँचलसे आँखें पोंछकर उसने फिर कहा—मा, कलंक और घृणाकी सारी स्याही अपने मुँहपर पोतकर ही हम लोग बिदा हो रहे हैं—तुम्हारे समाजमें इसका न्याय नहीं होगा,—पर, जिनके महापातकका बोझ लादकर हम लोगोंको जाना पड़ रहा है, उनका न्याय करनेवाले भी एक हैं—आखिर, उन्हें तो एक दिन पता लग ही जायगा ।

फिर भी, घरके भीतर उसी तरह सन्नाटा रहा,—किवाड़ उसी तरह बन्द रहे । संध्या पिताके पीछे पीछे घरसे निकल गई । कोई आदमी पास ही पेड़के नीचे खड़ा था, उसके पास आते ही प्रियनाथने चाँदनीके उजालेमें उसे पहचानकर कहा—कौन, अरुण हो क्या ?

अरुणने कहा—जी हाँ, आज आप बारह बजेकी गाड़ीसे जानेवाले हैं,—सुनकर मैं मिलने आया हूँ।

प्रियनाथने कहा—हाँ। और यह देखो न कैसी मुश्किल है, लड़की किसी तरह छोड़ती ही नहीं,—साथ चलनेको तैयार है। मैं कहाँ जाऊँगा, कहाँ रहूँगा, कोई ठीक थोड़े ही है,--देखो तो इसका पागलपन!

अरुण दंग रह गया, बोला—संध्या, तुम भी जाओगी?

संध्याने सिर्फ इतना ही जवाब दिया—हाँ।

अरुणने क्षण-भर मौन रहकर अत्यन्त संकोचके साथ कहा—उस दिन रातको मैं किसी भी तरह मनको स्थिर न कर सका था; पर, आज निश्चय कर लिया है,—तुम्हारी बातपर राजी होता हूँ, संध्या।

प्रियनाथ, समझ न सकनेके कारण, सिर्फ देखते रहे। संध्याने शान्त कंठसे धीरे धीरे कहा—उस दिन, मैं भी बड़ी उतावली हो गई थी अरुण-भइया, पर आज मेरा भी मन स्थिर हो गया है। स्त्रियोंके लिए ब्याह करनेके सिवा दुनियामें और कोई काम है या नहीं, यही जाननेके लिए मैं बाबूजीके साथ जा रही हूँ। पर, अब तो ठहरनेका समय नहीं है, अरुण-भइया,—कर सको तो हम लोगोंको क्षमा कर देना।

इतना कहकर संध्या पिताका हाथ पकड़कर आगे बढ़ गई। अरुण भी जब साथ साथ चलने लगा, तब संध्याने मुड़कर कहा—नहीं अरुण-भइया, तुम हमारे साथ नहीं आ सकते, तुम घर जाओ।

अरुणने कहा—संध्या, ऐसे कष्टके समय तुम अपनी माको छोड़े जा रही हो?

संध्याने कहा—क्या करूँ अरुण-भइया, इतने दिनोंतक पिता-माता दोनोंकी सेवा करनी बदी थी; पर, आज उनमेसे एकको छोड़ना पड़ रहा है। माके लिए फिर भी कुछ न कुछ इन्तज़ाम है। कल बहुतेरे लोग तमाशा देखने आये थे, और उनमेंसे कोई कोई कह रहे थे कि कोई एक प्रायश्चित्त है, जिससे मा शुद्ध हो सकती हैं। है, तो अच्छा ही है। तब फिर, उन्हें देखने-भालनेवालोंकी भी कमी न रहेगी; पर, बाबूजीको तो मेरे सिवा और कोई भी सम्हालनेवाला नहीं दीखता दुनियामें। मगर अब खड़े मत रहो, बाबूजी, चलो।

यह कहकर वे दोनों फिर आगे बढ़ने लगे, और अरुण वहीं स्तब्ध होकर खड़ा रहा।

थोड़ी दूर चलकर देखा कि कुछ लोग पूड़ियों मछलियों और विविध प्रकारकी मिठाइयोंकी प्रशंसासे रास्तेको मुखरित करते हुए पान चबाते-चबाते घर लौट रहे हैं। आनन्द और परितृप्तिसे वे फूले नहीं समाते। चाँदनी रातमें कहीं वे पहचान न लें,—इस डरसे संध्या पिताका हाथ पकड़कर रास्तेके एक किनारे जा खड़ी हुई, और उनके निकल जानेपर फिर आगे बढ़ी।

आगे चलकर मोड़ पर घूमते ही उनके भूरि-भोजनका कारण समझमें आ गया। पासके आमके बागमें होकर गोलोक चटर्जीके मकानसे जोरका प्रकाश और उससे भी ज्यादा कोलाहल आ रहा था। पूड़ी लाओ, तरकारी इधर, दही कौन दे रहा है, मिठाई कहाँ है,—इत्यादि अनेक कंठोंकी आवाज़से सारा स्थान गूँज रहा था।

प्रियनाथने कहा—गोलोक चटर्जीका आज बहू-भात है न! कर्म-काजमें चटर्जी खिलाते-पिलाते अच्छा हैं। सुना है कि पाँचों गाँव न्योते गये हैं,—ब्राह्मण शूद्र कोई घर नहीं छूटा है।

संध्याने आश्चर्यके साथ पूछा—किसका बहू-भात बाबूजी? गोलोक नानाका अपना?

प्रियनाथने कहा—हाँ, प्राणकृष्णकी लड़कीके साथ परसों ब्याह हो गया न!

संध्याके मुँहसे सिर्फ इतना ही निकला—हरिमतीके साथ? उसका बहू-भात है?

प्रियनाथने कहा—हाँ हाँ, हरिमती ही नाम है उसका। गरीब ब्राह्मण बच गया बेचारा,—लड़की बड़ी हो गई थी।—क्या है री?

"कुछ नहीं बाबूजी, चलो, हम लोग यहाँसे जरा जल्दी निकल चलें।"

यह कहकर संध्या पिताका हाथ पकड़कर उन्हें लगभग घसीटकर स्टेशनकी ओर ले चली।

❦ ❦ ❦

पिताको लेकर संध्या जब स्टेशन पहुँची, तब गाड़ी आनेमें करीब आध घंटेकी देर थी। गाँवकी छोटी स्टेशन ठहरी, खास कर रातको लोग-बाग कम आते हैं,—सिर्फ़ प्लाटफार्मके एक किनारे कनेरके पेड़के अन्धकारकी छायामें कोई एक स्त्री अकेली बैठी थी, उसने इन्हें देखते ही सिटपिटाकर माथेका कपड़ा खींच लिया।

प्रियनाथ हटकर खड़े हो गये; परन्तु, संध्याकी तीक्ष्ण दृष्टिको वह धोखा न दे सकी; संध्या मिनट-भर चुपचाप देखती रही; फिर, आश्चर्यके साथ बोली—

ज्ञानदा जीजी, तुम यहाँ कैसे ? और अकेली क्यों ?

संध्याने ठीक पहचाना था, ज्ञानदा उसी क्षण दोनों हाथोंसे उसे छातीसे लगाकर फफक-फफककर रोने लगी। सन्ध्याके आश्चर्यकी सीमा न रही। वह अपने ही दुर्भाग्यमें डूबी हुई थी—इसी बीच उसीके पासके मकानमें और एक अभागिनीका भाग्य किस अतल गहराईमें डूब गया, इसका उसे पता भी नहीं; परन्तु-प्रियनाथका चेहरा बिलकुल फक पड़ गया।

संध्याने कहा—तुम कहाँ जाओगी, ज्ञानदा-जीजी ?

ज्ञानदाके रुँधे गलेसे आवाज़ न निकली, उसने सिर्फ सिर हिलाकर जतला दिया कि कहाँ जाना है, सो वह खुद नहीं जानती।

इसके बाद बहुत देर तक किसीने कोई बात नहीं कही; पर, गाड़ीका वक्त होता जाता था,—टिकट खरीदना होगा,—इसलिए, प्रियनाथने बड़ी कोशिशसे गला खोलकर कहा—तुम कहाँ जाओगी, ज्ञानदा ? तुमने क्या टिकट खरीद लिया है ?

ज्ञानदाने उसी तरह सिर हिलाकर कहा—नहीं।

उसके बाद अश्रु-विकृत कंठसे पूछा—आप कहाँ जायँगे ?

प्रियनाथने बताया—वृन्दावन।

"संध्या भी साथ जायगी क्या ?"

प्रियनाथने कहा—हाँ।

ज्ञानदाने आँचलकी गाँठ खोलकर कुछ रुपये प्रियनाथके पैरोंके पास रख दिये, और कहा—टिकटके दाम कितने लगते हैं;—मैं नहीं जानती; पर, ये पचास रुपये मेरे पास हैं, मुझे भी एक वृन्दावनका टिकट ला दीजिए। सिर्फ रास्तेमें ही आप मुझे अपने साथ ले चलिए, इससे ज्यादा और मैं दुनियामें किसीसे कुछ न चाहूँगी।

प्रियनाथ कुछ देर तक चुप रहे, फिर अन्तमें धीरेसे बोले—अच्छा, चलो, हमारे ही साथ चलो।

समाप्त

प्रकाश और छाया

शुरूमें ही अगर तुम ज़बान पकड़ लो कि ऐसा कभी हो ही नहीं सकता, तब तो मैं लाचार हूँ। और अगर कहो कि, हो भी सकता है,—दुनियामें कितना क्या क्या होता रहता है, सभी कुछ थोड़े ही जानता हूँ,—तो इस कहानीको पढ़ डालो। मेरा विश्वास है कि इससे किसी भी तरहकी कोई बड़ी हानि न होगी। और, कहानी लिखनेके लिए बैठते वक्त कुछ ऐसी प्रतिज्ञा तो कर ही नहीं ली है कि जो कुछ लिखूँगा, सब खालिस सत्य ही होगा। दो-एक लाइनें गलत हों तो हों, थोड़ा-बहुत मत-भेद हो तो हो,—इससे ऐसा क्या बनता-बिगड़ता है ?

हाँ, नायकका नाम है यज्ञदत्त मुखर्जी,—मगर सुरमा उससे कहती है 'प्रकाश।' तो नायिकाका नाम तो सुन ही लिया, लेकिन यज्ञदत्त उसे 'छाया' कहकर पुकारता है। कुछ दिन तो उनमें भारी कलह रहा; कौन प्रकाश है और कौन छाया,—किसी भी तरह इसकी मीमांसा नहीं। अन्तमें, सुरमाने समझा दिया,—तुम्हारी सूक्ष्म बुद्धिमें इतनी-सी बात नहीं आती कि तुम न हो तो मैं कहींकी भी नहीं; परन्तु, मेरे बिना रहे भी तुम चिरकाल चिरजीवी हो;—इसीसे तुम प्रकाश हो और मैं छाया।

यज्ञदत्त हँस दिया—इकतरफ़ा डिग्री पाना चाहती हो, तो ले लो, मगर फैसला किसी कामका नहीं हुआ।

"खूब हुआ है, बढ़िया हुआ है, बहुत अच्छा हुआ है,—प्रकाश, अब लड़नेकी ज़रूरत नहीं। तुम प्रकाश हो, मैं श्रीमती छाया हूँ।"

यह कहते हुए छायाने नाना प्रकारसे प्रकाशको तंग कर डाला।

कहानीका इतना तो हो गया। परन्तु, अब तुम्हीं लोगोंसे द्वन्द्व-युद्ध न हो जाय, यही डर है। तुम कहोगे, ये लोग स्त्री-पुरुष हैं; मैं कहूँगा, स्त्री-पुरुष ज़रूर हैं, पर पति-पत्नी नहीं हैं। जरूर ही तुम आँखें चढ़ा लोगे,—तो क्या अवैध प्रेम है ?

मैं कहूँगा,—बहुत ही शुद्ध प्रेम है। तुम लोगोंको किसी भी तरह विश्वास नहीं होगा; मुँह बनाकर पूछोगे,—उमर क्या है? मैं कहूँगा, प्रकाशकी उमर है तेईस सालकी और छाया है अठारहकी।

इसके बाद भी अगर सुनना चाहो, तो शुरू करता हूँ।

यज्ञदत्तके छोटी-सी छँटी हुई दाढ़ी, आँखोंपर चश्मा, सिरपर लेवेण्डरकी सुगंध, चुनी हुई ढाकेकी धोती, शर्टपर एसेन्स लगा हुआ, पैरोंमें मखमलके स्लीपर,—जिनपर छायाने अपने हाथसे फूल काढ़ दिये हैं,—लाइब्रेरीमें भर-भर पुस्तकें हैं और हैं घरपर अनेक दास-दासियाँ। टेबिलके किनारे बैठा हुआ यज्ञदत्त चिट्ठी लिख रहा है, सामने बड़ा-भारी आईना है। परदा हटाकर छायाने बड़ी सावधानीके साथ प्रवेश किया। उसकी तबीयत थी कि चुपचाप पीछेसे आकर आँखें मींच ले; पर, पीठके पास आकर हाथ बढ़ाते ही सामने शीशेपर नजर पड़ गई। देखा कि यज्ञदत्त उसके मुँहकी तरफ देख-देखकर मुसकरा रहा है। सुरमा भी हँस दी; बोली—क्यों देख लिया?

यज्ञदत्त—यह क्या मेरा कसूर है?

सुरमा—तो किसका है?

यज्ञदत्त—आधा तुम्हारा है; और आधा है शीशेका।

सुरमा—मैं उसे अभी ढँके देती हूँ।

यज्ञदत्त—ढँक न दो, लेकिन बाकीके लिए क्या करोगी?

सुरमाने दो-तीन बार हिल-डुलकर कहा—प्रकाश!

यज्ञदत्त—कहो छाया!

सुरमा—तुम लटते क्यों जाते हो?

यज्ञदत्त—मुझे तो ऐसा नहीं मालूम होता।

सुरमा—तुम खाते क्यों नहीं?

यज्ञदत्त हँसने लगा। बोला—सुरो, झगड़ा करने आई हो?

सुरमा—हूँ!

यज्ञदत्त—मैं इसके लिए राजी नहीं।

सुरमा—तुम ब्याह क्यों नहीं करोगे?

यज्ञदत्त—इसका जवाब तो रोज एक बार दिया ही करता हूँ।

सुरमा—नहीं, करना ही पड़ेगा।

यज्ञदत्त—सुरो, तुम अपना ब्याह क्यों नहीं करतीं ?

सुरमाने यज्ञदत्तके हाथसे चिट्ठी छीनकर कहा—छिः, विधवाका कहीं ब्याह होता है ?

यज्ञदत्तने कुछ देर चुप रहकर कहा—कौन जाने ? कोई कहता है, होता है; कोई कहता है, नहीं होता।

सुरमा—तो फिर मुझे इस निमित्तका भागी बनानेकी कोशिश क्यों ?

यज्ञदत्तने लम्बी साँस लेकर कहा—तो क्या हमेशा मेरी ही सेवा करते करते जीवन बिता दोगी ?

'हूँ' कहकर वह टप-टप आँसू गिराती हुई रोने लगी।

यज्ञदत्तने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—सुरो, तुम्हारे मनकी साध क्या है, क्या मुझे साफ साफ नहीं बताओगी ?

सुरमा—मुझे वृन्दावन भेज दो।

यज्ञदत्त—मुझे छोड़कर रह सकोगी ?

सुरमाके मुँहसे बात नहीं निकली।—दायें और बायें दो-एक बार सिर हिलानेके साथ ही उसकी आँखोंका पानी झरने-सा बहने लगा।

२

सुरमा—यज्ञ-भइया, वह कहानी फिरसे कहो न ?

यज्ञ०—कौन-सी सुरमा ?

सुरमा—वही, मुझे जब वृन्दावनमें खरीदा था। कितने रुपयेमें खरीदा ?

यज्ञदत्त—पचास रुपयेमें। मेरी उमर तब अठारह सालकी थी। बी० ए० का इम्तहान देकर पछाँहकी तरफ घूमने गया था। मा तब जिन्दा थीं, वे भी साथ थीं। एक दिन दोपहरको मालती-कुंजके पाससे वैष्णवियोंका एक दल गीत गाता हुआ जा रहा था, उसीमें पहले पहल मैंने तुम्हें देखा। यौवनकी पहली सीढ़ीपर पैर रखते ही दुनिया ऐसी सुन्दर-सुहावनी दीखने लगती है कि सिर्फ अपनी ही आँखोंसे उसका माधुर्य पूरा पूरा नहीं लूटा जा सकता। साध होती है, मनकी सी और दो आँखें इसी तरह एक साथ ऐसी शोभाका सम्भोग कर सकें,—अगर उसे समझा दे सकूँ,—यह क्या सुरमा, रोती हो ?

सुरमा—नहीं, तुम कहो।

यज्ञदत्त—तुम तब तेरह वर्षकी नवीन वैष्णवी थीं। हाथमें तंबूरा था और गीत गा रही थीं।

सुरमा—जाओ, मैं क्या गाना सकती हूँ ?

यज्ञदत्त—तब तो गा सकती थीं,—उसके बाद बहुत परिश्रमसे तुम्हें पाया, तुम ब्राह्मणकी लड़की थीं,—बाल-विधवा। मा तुम्हारी तीर्थमें आकर फिर घर न लौट सकीं,—स्वर्ग सिधार गईं। मैंने तुम्हें लाकर अपनी माके हाथ सोंप दिया, उन्होंने छातीसे लगा लिया;—उसके बाद, मरते समय वे फिर मुझे ही लौटा गईं।

सुरमा—यज्ञ-भइया, तुम्हारा घर कहाँ है ?

यज्ञदत्त—सुना है, किसननगरके पास है कहीं।

सुरमा—मेरे और कोई नहीं है ?

यज्ञदत्त—मैं हूँ न, यही तो तुम्हारा सब कुछ है, सुरमा।

सुरमाके पलक भीग गये, बोली—तुम मुझे फिर बेच सकते हो ?

यज्ञदत्त—नहीं, सो नहीं कर सकता। अपनको बिना बेचे यह काम हरगिज़ नहीं हो सकता।

सुरमा कुछ बोली नही, उसी तरह डबडबाई हुई आँखोंसे उसकी तरफ देखती रही। बहुत देर बाद धीरेसे बोली—तुम बड़े भइया हो, मैं छोटी बहन हूँ,—हम दोनोंके बीच एक अच्छी-सी बहू ले आओ न भइया।

यज्ञदत्त—क्यों भला ?

सुरमा—दिन-भर उसका साज-सिंगार करके उसे तुम्हारे पास लाकर बैठा दिया करूँगी।

यज्ञदत्त—सो क्या तुम पूरे मनसे कर सकोगी ?

सुरमाने मुँह उठाकर, उसकी आँखोंमें आँखें बिछाकर कहा—मैं क्या ऐसी अधम हूँ जो जलूँगी ?

यज्ञदत्त—जलोगी नहीं, पर अपनी जगह तो लुटा दोगी ?

सुरमा—लुटा क्यों दूँगी ? मैं राजाकी राजा ही रहूँगी, सिर्फ एक मंत्री बहाल कर दूँगी, दोनों जनीं मिलकर तुम्हारा राज्य चलावेंगी, बड़ा आनन्द आयेगा।

यज्ञदत्त—देखो छाया, विवाह करनेकी मुझे इच्छा नहीं; पर हाँ, तुम्हें अगर एक साथीकी बहुत जरूरत हो, तो ब्याह कर सकता हूँ।

सुरमा—हाँ, जरूर करो, बड़ा आनन्द आयेगा; दोनों जनीं खूब मौजसे दिन बितायेंगी।

इतना कहकर सुरमा मन ही मन बोली,—तीनों कुलमें मेरे तो कोई है नहीं; मान-अपमान हो, सो भी नहीं; लेकिन, तुम क्यों मेरे कारण दुनिया-भरका कलंक बटोरोगे? देव हो तुम मेरे! तुम ब्याह करो, तुम्हारा मुँह देखकर मैं सब सह लूँगी।

*　　*　　*

३

कलकत्तेमें ऐसे बहुत-से लोग हैं जो अपने पड़ोसीकी भी कुछ खबर नहीं रखते, और बहुत-से रखते हैं तो खूब रखते हैं। जो खबर रखते हैं, वे कहते हैं,—यज्ञदत्त बी० ए० पास भले ही कर ले, पर है आवारा लड़का। इशारेमें वे सुरमाकी बातका उल्लेख करते हैं। कभी कभी यह बात सुरमा और यज्ञदत्तके भी कानोंमें पड़ जाती है। सुनकर दोनों जने हँसने लगते हैं।

परन्तु, तुम अच्छे हो चाहे बुरे, अगर बड़े आदमी हो तो तुम्हारे घर लोग आयेंगे ही,—खासकर औरतें। कोई कहती—सुरमा, तुम अपने भइयाका ब्याह क्यों नहीं करवा देतीं?

सुरमा जवाब देती—करा दो न जीजी, अच्छी-सी एक लड़की देखके।

जो सुरमाकी सहेली होती वह हँस देती—यही तो, अच्छी लड़की मिलना मुश्किल है, तुम्हारे रूपसे जिसकी आँखें भरी हुई हैं; उसके—

"हट जलमुँही—" कहते कहते सुरमाका सारा चेहरा स्नेह और गर्वसे लाल हो उठता।

उस दिन दोपहरको टपटप मेह बरस रहा था, सुरमाने कमरेमें घुसते ही कहा—एक लड़की पसन्द कर आई हूँ।

यज्ञदत्त—उफ्, माथेसे एक चिन्ता हट गई। कहाँ, सुनूँ तो सही?

सुरमा—उस मुहल्लेके मित्तिरोंके यहाँ।

यज्ञदत्त—ब्राह्मण होकर कायस्थके घर?

सुरमा—क्यों, कायस्थोंके घर क्या बाम्हन नहीं रहते? उसकी माँ वहाँ रसोई बनानेका काम किया करती थी। सुना है, लड़की बहुत अच्छी है। देख आओ

अगर मनमें बैठ जाय तो घर ले आना।

यज्ञदत्त—मैं क्या ऐसा अभागा हूँ कि दुनिया-भरकी भिखारिनोंके सिवा मेरी गुजर ही न होगी ?

सुरमा—भिखारिन बटोर लाना तुम्हारे लिए कुछ नया काम थोड़े ही है !

यज्ञदत्त—फिर !—

सुरमा—नहीं, तुम जाओ, देख आओ। मनमें जम जाय तो 'ना' मत करना।

यज्ञदत्त—मनमें तो किसी हालतमें जम ही नहीं सकती।

सुरमा—जम जायगी जी, खूब जमेगी ! एक बार देख तो आओ।

छायादेवीने फिर प्रकाशदेवको ऐसा सजा दिया,—खूब खुशबू वगैरह लगा कर, माँज-घिसकर, बाल काढ़कर,—इस ढंगसे आईनेके सामने खड़ा कर दिया कि यज्ञदत्तको शरम मालूम होने लगी। बोला—छिः, यह तो बहुत ज्यादती हो गई।

सुरमाने कहा—हो जाने दो, तुम देख आओ।

गाड़ीपर सवार होकर यज्ञदत्त लड़की देखने चल दिया। रास्तेमें एक मित्रको भी अपने साथ कर लिया।—चलो, मित्तिरोंके यहाँ जल-पान कर आवें।

मित्रने पूछा—इसके मानी ?

यज्ञदत्त—उनके घर एक भिखारिनकी लड़की है। उसके साथ ब्याह करना होगा।

मित्र—कहते क्या हो, यह सीख किसने दी ?

यज्ञदत्त तुम लोग जिसकी ईर्षासे मरे जा रहे हो, उसी छाया देवीने।

यज्ञदत्त अपने मित्रके साथ लड़की देखने मित्तिरोंके घर पहुँचे। लड़की कार्पेटके आसनपर बैठी थी, कई बारकी धुली हुई देशी साड़ी पहने,—उसके सूत कहीं-कहीं ऐसे बिखर गये थे जैसे जाली। हाथोंमें बिल्लौरी चूड़ियाँ थीं और ताँबेके-से रंगके सोनेके इँठे हुए कड़े,—कहीं कहीं उनके भीतरका चपड़ा दीख रहा था। माथेमें इतना तेल था कि ललाट तक चकचक कर रहा था, और सिरके बीचों-बीच ठीक ब्रह्मतालुके ऊपर काठ-सा कड़ा बँधा हुआ जूड़ा ऊँचा खड़ा था। दोनों मित्र उसे देखते ही मुसकरा दिये। हँसीको छिपाते हुए लड़कीकी तरफ देखकर यज्ञदत्तने कहा—क्या नाम है तुम्हारा ?

लड़कीने अपनी बड़ी बड़ी काली आँखोंको शान्तभावसे उसके मुँहपर रखते

यज्ञदत्तने अपने मित्रको चुटकी भरकर मुसकराते हुए कहा—क्यों भाई, गदाधर *तो नहीं ?

मित्रने हलका-सा एक धक्का देकर कहा—ज्यादा बको मत, झटपट पसन्द कर डालो।

"हाँ, अभी लो—"

"अच्छा,—अच्छा, क्या पढ़ती हो ?"

"कुछ नहीं।"

"और भी अच्छा है।"

"काम-काज करना आता है ?"

प्रतुलने सिर हिलाया। पास ही एक नौकरानी खड़ी थी, उसने व्याख्या कर दी—बड़ी कमेरी लड़की है बाबूजी, रसोई बनाने परोसने घरके काम-धन्धेमें अपनी माके जैसी है। और मुँहसे तो इसके बात ही नहीं निकलती,—बड़ी शान्त है।

"सो तो देख ही रहा हूँ। तुम्हारे बाप हैं ?"

"नहीं।"

"मा भी मर गई हैं ?"

"हाँ।"

यज्ञदत्तने देखा कि उस गूँगी-बेवकूफ लड़कीकी आँखोंमें आँसू भर आये हैं, पूछा—तुम्हारे क्या कोई भी नहीं है ?

"नहीं।"

"हमारे घर चलोगी ?"

उसने गरदन हिलाई—हाँ। इतनेमें उसकी जंगलेकी तरफ निगाह पड़ी तो देखा कि खिड़कीमेंसे दो काली आँखें जैसे आग बरसा रही हों ! तब उसने डरकर कह दिया—नहीं।

बाहर आकर मित्तिर साहबसे भेंट हुई।

"कैसी दिखी लड़की ?"

---

* स्व० गिरीशचन्द्र घोषके नाटकका एक पात्र, जो तलाशीके वक्त पुलिसके डरसे स्त्रीकी पोशाक पहनकर अपनेको छिपाना चाहता है।

" अच्छी है । "
" तो फिर ब्याहका मुहूर्त सुधवाया जाय ? "
" हाँ—हाँ । "

*   *   *   *

४

बारह-तेरह वर्षके लड़केके हाथसे जब कोई निर्दय रसहीन अभिभावक उसका अध-पढ़ा कौतुकपूर्ण उपन्यास छीनकर छिपा देता है, तब उसकी जैसी हालत होती है,—भीतरका प्राण व्याकुल भावसे उस शुष्क-मुख शंकित बालकको कभी इस कोठरीमें और कभी उस कोठरीमैं दौड़ाता रहता है, डरती हुई उसकी तीव्र आँखें जैसे उस प्रिय पदार्थको खोजनेमें व्यस्त और परेशान हो जाती हैं, और उसकी सर्वदा इच्छा होती रहती है कि किसीपर खूब गुस्सा होवे,—उसी तरह सुरमा यज्ञदत्तके लिए छटपटाने लगी । वह क्या जाने क्या ढूँढ़कर निकालेगी । कुरसी, बेञ्च, शोफा, पलंग, कमरा, वरंडा, सभी चीजोंपर वह नाराज़ हो उठी । सड़ककी तरफका एक भी जंगला उसे पसन्द न आया; कभी इसपर और कभी उसपर बैठने लगी । यज्ञदत्तने कमरेमें प्रवेश किया ।

" क्या हुआ प्रकाश महाशय ? "

प्रकाशका चेहरा गम्भीर हो गया ।

सुरमा—पसन्द आई ?

यज्ञदत्त—आई ।

सुरमा—कबका ब्याह है ?—

यज्ञदत्त—शायद, इसी महीनेमें,—

निरानन्द उत्साहके साथ सुरमा पास आई, पर उसने किसी तरहका ऊधम नहीं किया, कहा—तुम्हें मेरे सिरकी कसम, सच बताओ ।

" कैसी आफत है, सच ही तो कह रहा हूँ । "

" मेरा मरा मुँह देखो,—बताओ, पसन्द आ गई ? "

" हाँ—"

सहसा सुरमाको मानो कोई शब्द ढूँढ़े नहीं मिला । बच्चे जैसे फटकार खाकर रोनेसे पहले इधर-उधर गरदन हिलाकर कोई अर्थहीन बात कह डालते हैं, सुरमाने

भी उसी तरह बच्चों जैसी गरदन हिलाकर गाढ़े स्वरमें कहा—मैंने तो पहले ही कह दिया था !

यज्ञदत्त अपनी ही चिन्तामें व्यस्त था; इसलिए, समझ नहीं सका कि उसके कुछ मानी ही नहीं होते; क्योंकि, पहले तो ' पसन्द ही होगी ' ऐसी बात सुरमाने कभी कही नहीं; दूसरे उसने खुद भी लड़की नहीं देखी; बल्कि, ऐसी तो उसने बिलकुल आशा ही नहीं की थी कि इतनी जल्दी पसन्द आ जायगी और सगाई भी पक्की हो जायगी। इसीसे वह दिन-भर अपने कमरेमें बैठकर इस बातकी चिन्ता करने लगी। दो दिन बाद यज्ञदत्तके बहुत कुछ समझमें आ गया। बोला—सुरो, यह ब्याह मत कराओ, बहन।

सुरमा—वाह, ऐसा भी कहीं होता है ? सगाई जो पक्की हो गई है ?

यज्ञदत्त—पक्की कुछ नहीं हुई।

सुरमा—नहीं, सो नहीं हो सकता, दुखिया लड़कीको सुखी करना है, यह भी तो जरा सोचो; खासकर, वचन देकर मुकरोगे ?

यज्ञदत्तको प्रतुलकुमारीका मुखड़ा याद आ गया, उस दिन उसकी काली काली आँखोंमें मानो उसने सहिष्णुता और शान्तभावकी निगूढ़ छाया देखी थी,—इससे वह चुप हो रहा। फिर भी, बहुत-सी बातें सोचने लगा। सुरमाके बारेमें ही ज्यादा सोचा। वर्षाके दिन सहसा बरसाती पतिंगे जैसे घर-भरमें भर जाते हैं, उसी तरह उसका सारा मन भी बेचैनीसे भर गया; और, साथ ही, उनका छिपा हुआ वास-गह्वर जैसे ढूँढ़े नहीं मिलता, उसी तरह सुरमाके मुँहकी बातें हृदयकी किस गुप्त आकांक्षाके भीतरसे झुंड बाँधकर निकलने लगीं, इसका भी कुछ पता नहीं लगा। उसकी आँखोंपर ऐसा एक धुँधला-सा जाल पड़ गया कि उसे किसी भी तरह सुरमाका चेहरा न दिखाई दिया।

* * * *

५

ब्याह करके यज्ञदत्त बहूको घर ले आया। विकार-ग्रस्त रोगीके घरमें कोई आदमी न रहनेसे जैसे वह अपनी सारी शक्तियोंको एकत्र करके पानीके घड़ेकी तरफ दौड़कर उससे चिपट जाता है, सुरमाने ठीक उसी तरह नई बहूको छातीसे चिपटा लिया। अपना जितना भी ज़ेवर था, सब उसे पहना दिया;

और, जितने कपड़े थे, सब उसके बॉक्समें भर दिये। सूखे मुँहसे दिन-भर बहूको सजानेकी धूम देखकर यज्ञदत्तका मुँह इतना-सा निकल आया। गभीर स्वप्न तो सहा जा सकता है,—क्योंकि, असह्य होते ही नींद टूट जाती है; परन्तु, जागते हुए स्वप्न देखनेमें तो दम अटकने लगता है; किसी तरह वह खतम नहीं होता,— और नींद भी नहीं टूटती। कभी मालूम होता है यह स्वप्न है, कभी मालूम होता है यह सत्य है। प्रकाश और छाया दोनोंके ही ऐसा भाव आने लगा। एक दिन अपने कमरेमें बुलाकर यज्ञदत्तने कहा—छाया!

"क्या है यज्ञ-भइया?"

"'प्रकाश' नहीं कहा?"

सिर झुकाकर सुरमाने कहा—प्रकाश।

यज्ञदत्तने दोनों हाथ बढ़ाकर कहा—बहुत दिनोंसे पास नहीं आई, आओ।

सुरमाने एक बार उसके मुँहकी तरफ देखा; और, दूसरे क्षण कह उठी— वाह, मैं भी खूब हूँ! बहूको अकेली छोड़ आई हूँ!

कहती हुई वह जल्दीसे भाग गई।

गुस्सेमें अगर किसी अपरिचित भले आदमीके गालमें थप्पड़ मार दिया जाय, और वह अगर शान्त-भावसे क्षमा करके चला जाय, तो उस समय जैसा मन खराब हो जाता है, वैसे ही क्षमाप्राप्त अपराधीकी तरह उसका भी मन क्रमशः उत्साह-हीन होने लगा। बार बार यही मालूम होने लगा,—उसने अपराध किया है और सुरमा उसे जी-जानसे क्षमा कर रही है।

सुरमा सर्व आभरणोंसे भूषित नववधूको जबरदस्ती उसके पास बिठा देती। शाम होते ही बाहरसे चटसे ताला बंद कर देती। यज्ञदत्त गालपर हाथ रखकर सोचता रहता। बहू भी कुछ कुछ समझ जाती है; वह सयानी लड़की नहीं है,— फिर भी, है तो नारी; और साधारण स्त्री-बुद्धिसे भगवान् किसीको भी वंचित नहीं रखते। वह भी सारी रात जागती रहती।

ब्याह हुए आज आठ दिन भी नहीं हुए, इतनेहीमें एक दिन सबेरे यज्ञदत्तने सुरमाको बुलाकर कहा—सुरो, बर्द्धमानमें बुआजीको बहू दिखा लाऊँ।

* * * *

दामोदर नदीके उस पार बुआका गाँव है। बुआके घर पहुँचते ही यज्ञदत्तने कहा—बुआजी, बहू लाया हूँ, देखो।

बुआ—अरे, ब्याह कर लिया! ओ हो, जीओ जीओ, हजारी उमर हो! बड़ी अच्छी चन्दा-सी बहू है, अब आदमीकी तरह घर-गिरस्ती चलाओ, बेटा!

यज्ञदत्त—इसी लिए तो सुरमाने ज़बरदस्ती ब्याह कराया है।

बुआ—अच्छा, सुरोने यह ब्याह करवाया है?

यज्ञदत्त—उसीने तो कराया है, पर तकदीर ही खराब निकली,—इस बहूके साथ घर नहीं चल सकता।

बुआ—क्यों, सो क्यों?

यज्ञदत्त—जानती तो हो बुआ, मेरा नर गण है, और बहूका है राक्षस गण। एक साथ रहनेसे ज्योतिषीने कहा, जीया न जीया।

बुआ—अरे बेटा, ऐसी बात—

यज्ञदत्त—तब जल्दीसे ये सब बातें देखी नहीं गई, अब यह तुम्हारे ही पास रहा करेगी, माहवारी पचास रुपये तुम्हें भेज दिया करूँगा, इतनेसे काम नहीं चल जायगा बुआ?

बुआ—हाँ, सो चल जायगा। गँवई-गाँवमें, विशेष कोई तकलीफ नहीं होगी। अहा, चाँद-सी बहू है, बड़ी हो गई है,—क्यों रे जग्गू, कोई शान्ति-विधान करानेसे काम नहीं चलेगा?

यज्ञदत्त—चल सकता है। मैं भट्टाचार्यजीसे पूछकर, जैसा होगा, तुम्हें खबर दूँगा।

बुआ—अच्छा, सो देना बेटा।

शामके वक्त बहूको पास बुलाकर यज्ञदत्तने कहा—तो तुम यहीं रहो।

उसने गरदन हिलाकर कहा—अच्छा।

"तुम्हें जब जिस चीज़की जरूरत हो, मुझे खबर देना।"

"अच्छा।"

"तुम्हें चिट्ठी लिखना आता है?"

"नहीं।"

"तो फिर, कैसे खबर दोगी?"

नववधू घरकी पालतू हरिणीकी तरह अपनी आँखोंको पतिके चेहरेपर गाड़कर चुपचाप खड़ी रही। यज्ञदत्त मुँह फेरकर चला गया।

बुआजीके घर बहू खूब तड़के ही उठकर काम-काजमें लग जाती है। बैठा

रहना उसने सीखा ही नहीं। बिलकुल नई होनेपर भी उसने परिचितकी भाँति घरका काम-धन्धा करना शुरू कर दिया। दो-चार दिनमें ही बुआजी समझ गई कि ऐसी लड़की सभीकी कोखसे नहीं होती।

बहूके पास बहुत गहने हैं; मुहल्ला-भर देखने आता है। किसीने पूछा—किसने दिया है बहू ? तुम्हारे बापने ?

" मा-बाप मेरे नहीं हैं, ननदजीने दिया है। "

दो-एक बराबरकी उमरवालियोंसे मेल हो जानेपर वे खोद-खोदकर भेद जाननेकी कोशिश करने लगीं। पूछने लगीं—तुम्हारी ननद शायद खूब बड़ी आदमिन हैं ?

" हाँ। "

" सब गहने उन्हींके हैं ? "

" सब। "

" वे नहीं पहनतीं ? "

" विधवा है वे, पहनती नहीं।

" कितनी उमर है बहू ? "

" हम लोगोंसे कुछ बड़ी होगी ? उन्हींने ज़बरदस्ती अपने भइयासे मेरा ब्याह कराया है। "

" तुम्हारा वर उनका खूब कहना मानता है, क्यों ? "

" हाँ, वे सती-लक्ष्मी हैं, सभी उनसे प्रेम करते हैं। "

* * *

६

ऊपरके जंगलेसे सुरमाने देखा, यज्ञदत्त घर लौट आये, पर साथमें बहू नहीं है। घरमें घुसते ही उसने पूछा—भइया, बहूको कहाँ छोड़ आये ?

" बुआजीके घर।

" साथमें ले क्यों नहीं आये ? "

" रहने दो अभी, कुछ दिन बाद देखा जायगा। "

बात सुरमाकी छातीमें चुभ गई। दोनों चुप बने रहे। प्रिय जनोंमें बहस करते करते अचानक झगड़ा हो जानेसे जैसे दोनों कुछ देरतक क्षुण्ण मनसे चुपचाप

बैठे रहते हैं,—ये दोनों जने भी कुछ दिन उसी तरह चुपचाप दिन बिताते रहे। सुरमा कहती,—नहा-धोकर खा-पी लो, बहुत अबेर हो गई है। यज्ञदत्त कहता, —हाँ, जाता हूँ।

ऐसे ही कुछ दिन बीत गये।

एक साथ रहकर घर-गिरस्ती चलानेका काम हमेशा इस तरह नहीं हो सकता, इसीसे फिर मेल होने लगा। यज्ञदत्त फिर लाड़-प्यारके साथ बुलाने लगे—ओ छाया! मगर, छाया अब 'प्रकाश' नहीं कहती। कभी 'यज्ञ-भइया' कहती है, कभी सिर्फ 'भइया' कहकर ही पुकारती है।

एक दिन सुरमाने कहा—भइया, करीब तीन महीने होने आये, अब बहूको ले आओ।

यज्ञदत्त बात टाल देता—हाँ, सो आ जायगी। सुरमा उसके मनका भाव समझकर चुप रह जाती।

बुआकी चिट्ठी कभी कभी आ जाया करती है। बुआ लिखती हैं, बहूको मलेरिया बुखार आने लगा है; इलाज होना जरूरी है। मतलब समझकर यज्ञदत्त और कुछ रुपये ज्यादा भेज देता। महीने-भर कोई बात ही नहीं छिड़ती।

इतनेमें ही एक दिन अकस्मात् चिट्ठी आई—बुआ मर गई!

यज्ञदत्त—वर्द्धमान चला गया। जाते समय सुरमाने सिरकी कसम देकर कह दिया,—बहूको लेते आना।

बर्द्धमानमें, बुआकी तेरहीं हो जानेके बाद, एक दिन दोपहरको यज्ञदत्त वरंडेमें खड़ा खड़ा घर आनेकी बात सोच रहा था। आँगनमें धानके भिसौराके पास नई बहू खड़ी थी; उसपर उसकी निगाह पड़ गई। चार आँखें होते ही उसने हाथसे इशारा करके उसे पास बुलाया।

बहू पास आ गई।

"क्यों?"

"आपसे कुछ कहूँगी।"

"अच्छी बात है, कहो।"

नई बहूने घूँट-सा भरते हुए कहा—एक दिन आपने कहा था, अगर मुझे कुछ जरूरत हो—

यज्ञदत्त—हाँ हाँ, क्या ज़रूरत है बताओ—

बहू—घरमें सभी-कोई कहा-सुनी करती रहती हैं, बड़ी कुलच्छिनी हूँ; इससे यहाँ अब रहनेको जी नहीं करता।

यज्ञदत्त—कहाँ रहना चाहती हो ?

बहू—कलकत्तेमें अगर कहीं भले-घरमें जगह मिल जाती,—मैं तो सब काम कर जानती हूँ।

यज्ञदत्त—तुम अपने घर जाओगी ?

बहू—मेरा अपना घर ? कहाँ है सो ? वे क्या अब रहने देंगे ?

यज्ञदत्तने अपने हाथसे स्त्रीका मुँह ऊँचा करके कहा—मेरे घर चलोगी ?

बहू—चलूँगी।

यज्ञदत्त—सुरमा तुम्हारे लिए बड़ी घबरा रही है।

सुरमाके जिक्रसे उसका चेहरा मारे खुशीके फूल उठा,—जीजी मेरी याद करती हैं ?

यज्ञदत्त—खूब करती हैं।

बहू—तो ले चलिए।

दुनियामें ऐसे एक तरहके आदमी हैं, जिन्हें दूसरोंके बारेमें अपनी राय जाहिर करनेकी बुद्धि ही किसी तरह ढूँढ़े नहीं मिलती; किन्तु, साथ ही उनमें ऐसी एक सहज बुद्धि होती है कि वे उसपर निर्भर होकर अपने बारेमें और किसीसे सलाह लेनेकी कतई ज़रूरत नहीं समझते। नई बहू इसी कोटिकी है। वह अपनी बात आप ही सोचती है,—दूसरेसे नहीं पूछती। उसने सोचकर कहा—आप लोगोंका अमंगल होनेका बड़ा डर है मुझे, पर रहूँ भी तो कहाँ रहूँ ? नहीं तो, मैं नीचे ही रहा करूँगी, सब काम-काज करनेमें नीचे आराम भी रहेगा।

यज्ञ—ऊपर क्या तुम्हारे रहनेका कमरा नहीं है ?

“ है, पर नीचेके कमरेमें ही अच्छी रहूँगी। ”

यज्ञदत्तने फिर कोई बात नहीं की। वह सोचने लगा, इसकी बातें तो बिलकुल बेवकूफोंकी-सी नहीं हैं, और कई बार मनमें आई कि कह दे,—वह कुलच्छिनी नहीं है, राक्षस गण वगैरह सब झूठ है। पर झूठ बोलनेका कारण क्या, सो कैसे बताया जाय ? खासकर वह इस बातका भी भरोसा नहीं कर सका कि घर जाकर वह अपने पिछले और आगेके व्यवहारमें अच्छी तरह सामंजस्य भी रख सकेगी।

७

सुरमाने देखा, कि बहू आ गई। उग्र नशेका पहला झोंका सँभाल करके अब वह स्थिर हो गई है। इसीसे बहूको देखनेके लिए उसने ज्यादती नहीं की। शान्त धीर भावसे प्रिय-सम्भाषण किया; मौखिक ही नहीं,—अन्त-रंगकी मंगलेच्छा उसके सूखे चेहरेपर फिरसे ज्योति ले आई। बोली—बहू, तबीयत तो तुम्हारी वहाँ ठीक नहीं रही ?

बहूने सिर हिलाकर कहा—बीच-बीचमें बुखार आ जाता था।

सुरमाने उसके माथेका पसीना पोंछकर कहा—यहाँ इलाज होते ही सब अच्छा हो जायगा।

दोपहरको सुरमाको खबर लगी कि बहूके लिए नीचेका कमरा साफ हो रहा है; मारे अपमानके उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। किसी तरह उन्हें रोकते हुए वह यज्ञदत्तके पास जाकर बोली—भइया, बहू क्या नीचे सोवेगी ?

यज्ञदत्तने पुस्तकपरसे बिना आँख उठाये ही कहा—वह तो यही कहती है।

" तुम कुछ नहीं कहोगे ? "

" मैं क्या कहूँ ? जिसके मनमें जो आवे, करे। "

सुरमा लज्जा और धिक्कारसे अपनेको क़ाबूम न रख सकी, उसके सामने ही रो दी और भाग खड़ी हुई।

ऊपरकी यह वारदात नीचे तक न पहुँची।

नई बहू नये सिरेसे घरके काम-काजमें जुट पड़ी। क्रमशः धीरे-धीरे उसने सुरमाका सब काम अपने हाथमें ले लिया। सिर्फ ऊपर नहीं जाती—पतिके साथ मुलाकात नहीं करती। धीरे धीरे सुरमाने भी ऊपरका जाना-आना छोड़ दिया! बहू प्रफुल्ल-गम्भीर मुखसे काम करती, और सुरमा पास बैठी रहती। एक यह दिखाती कि काम करनेमें कितना सुख है, और दूसरी यह समझती कि कामकी बहती धारामें कितना दुःख बहाया जा सकता है। दोनोंमेंसे कोई भी ज्यादा बात-चीत नहीं करती; फिर भी, उनमें परस्पर सहानुभूति क्रमशः गाढ़ी ही होती गई।

बीच-बीचमें नई बहूको अकसर बुखार आता, और दो चार दिन उपास करनेसे आप ही चला जाता। दवा खानेकी ओर न उसकी प्रवृत्ति है, और न खाती है। उस समयका काम-धन्धा नौकर-नौकरानियाँ ही करती हैं, सुरमासे होता नहीं, इच्छा होनेपर भी यह उसके सामर्थ्यसे बाहरकी बात है।

सोनेकी प्रतिमा सुरमा देवीका अब न तो वह रंग है और न वह कान्ति; इतना लावण्य इन दो ही महीनोंमें न जाने कहाँ उड़ गया! बहू कभी कभी कहती है—जीजी, तुम दिन पर दिन ऐसी क्यों होती जाती हो ?

" मैं ? अच्छा भाभी, तन्दुरुस्ती सुधारनेके लिए अगर कहीं बाहर चली जाऊँ तो तुम्हें तकलीफ तो न होगी ? "

" जरूर, होगी क्यों नहीं ? "

" तो नहीं जाऊँगी। "

" नहीं जीजी, मत जाना, तुम दवा-दारू कराके यहीं अच्छी हो जाओ। "

सुरमाने मारे स्नेहके उसका ललाट चूम लिया।

एक दिन सुरमा यज्ञदत्तके लिए थाली लगा रही थी। यज्ञदत्त उसका मलिन सूखा चेहरा सतृष्ण दृष्टिसे देख रहा था। सुरमाके आँख उठाकर देखते ही उसने दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा—मनमें आता है मर जाऊँ तो अच्छा।

" क्यों ? " कहते ही सुरमाकी आँखोंमें आँसू भर आये।

" डरता हूँ, न जाने और कबतक प्राणोंका भार ढोना पड़ेगा। "

बन्दूककी गोली खाकर वनका पशु जैसे जमीन छोड़कर आसमानकी ओर भागनेके लिए जी-जानसे उछल पड़ता है, किन्तु, आसमान उसका कोई नहीं, इसलिए वह आश्रयशून्य मरणाहत जीव अन्तमें चिर-आश्रय पृथिवीको ही हृदयसे लगाकर प्राण त्याग देता है, उसी तरह छटपटाती हुई सुरमाने पहले तो आकाशकी ओर देखा, उसके बाद ठीक उसी तरह जमीनपर लोटकर वह रोने लगी—यज्ञ-भइया, क्षमा करो, मैं तुम्हारी शत्रु हूँ, मुझे और कहीं भेज दो, तुम सुखी होओ।

कहीं नौकरानी न आ जाय, इस डरसे यज्ञदत्तने हाथ पकड़कर उसे उठा लिया। स्नेहसे उसके आँसू पोंछते हुए कहा—छिः, इस तरह लड़कपन नहीं किया करते।

आँसू पोंछती हुई सुरमा झटपट कमरेमें चली गई और उसने भीतरसे दरवाज़ा बन्द कर लिया।

८

उसके बाद, एक दिन सुरमाने बहूको अपने पास खींचकर धीरेसे पूछा—बहू, भइयाने क्या तुमसे कभी कुछ कहा है ?

बहूने सहज भावसे जवाब दिया—कहेंगे क्या ?

"तो फिर, तुम उनके पास जाती क्यों नहीं ? तुम्हारी क्या तबीयत नहीं होती जानेकी ?"

बहूको पहले तो शरम मालूम होने लगी; फिर, सिर झुकाकर बोली—होती तो है जीजी, लेकिन जाना तो नहीं हो सकता न !

"क्यों बहू ?"

"तुम्हें याद नहीं ?"

"नहीं तो !"

"अरे, शायद तुम भूल गई हो जीजी, मेरा जो राक्षस गण है और उनका नर गण है।"

"किसने कहा— ?"

"उन्होंने बुआजीसे कहा था, इसीसे तो--"

सुरमाके एकाएक रोंगटे खड़े हो गये, बोली—यह तो झूठी बात है बहू।

"झूठी बात ?"

आँखें फाड़कर वह सुरमाके मुँहकी ओर देखती रह गई। सुरमाके बारबार रोंगटे खड़े होने लगे। बोली—झूठी बात है बहू, बिलकुल झूठ !

"मुझे विश्वास नहीं होता, वे झूठ बोलेंगे।"

सुरमासे अब नहीं सहा गया। वह दोनों बाहुओंसे उसका दृढ़ अलिंगन करके फूट-फूटकर रोने लगी—बहू, मैं महापातकिनी हूँ।

बहूने अपनेको छुड़ाकर धीरेसे कहा—क्यों जीजी ?

"उफ्, उसे अब मत सुनो। मैं नहीं कह सकूँगी।"

आँधीकी तरह सुरमा यज्ञदत्तके सामने आ पहुँची। बोली—बहूको इस तरह धोखेमें रख छोड़ा है ? उफ्, कैसे भयानक झूठे हो तुम !

यज्ञदत्त दंग रह गया।

"यह क्या सुरो !"

"कृतविद्य हो तुम, छिः छिः, तुम्हें शरम आनी चाहिए थी।"

यज्ञदत्त कुछ मानी नहीं समझा, सिर्फ कड़ुई बातें सुनने लगा—

" क्या सोचकर ब्याह किया था ?—क्या सोचकर उसे छोड़े हुए हो ?—मेरे लिए ? मेरा मुँह देखकर इस तरह धोखा देते आ रहे हो ? "

" सुरमा, पागल हो गई हो क्या ? "

" पागल मैं हूँ ? तुमसे मुझमें ज्यादा ज्ञान है,—तो मुझे और कहीं भेज दो ! " कहते हुए सुरमाकी आँखें सुर्ख हो गईं, हाँफती हुई बोली—एक छिन भी नहीं रहना चाहती मैं, छिः छिः ।—

यज्ञदत्तने बड़े ज़ोरसे चिल्लाकर कहा—क्या कहती हो ?

" कहती हूँ, तुम झूठे हो, धोखेबाज हो ! "

निमेषमात्रमें यज्ञदत्तके माथेके अन्दर आग-सी जल उठी; बिना कारण ही उसे मालूम हुआ, उसके भीतरकी आत्मा बाहर निकलकर उसे युद्ध करनेके लिए ललकार रही है ! ज्ञान-शून्य होकर वह टेबिलपर रखा हुआ भारी ' रूलर ' उठाकर जोरसे चिल्लाता हुआ बोला—मैं अधम हूँ,—मैं धोखेबाज हूँ, झूठा हूँ !—और यह उसका प्रायश्चित्त करता हूँ !

कहते हुए यज्ञदत्तने पूरी ताकतसे उसे अपने सिरपर मार लिया। सिर फटकर झरझर खून बहने लगा। सुरमा अस्फुट स्वरसे पुकार उठी—" मैया री। " उसके बाद वह बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़ी। यज्ञदत्तने उसे देखा, देखा कि स्वयं उसका तमाम मुँह खूनसे लथपथ हो गया है, आँखोंमें खून चला जानेसे सब धुँधला-सा दिखाई देता है, वह उन्मत्तकी तरह कहने लगा—अब क्यों ? इतनेमें पीछेसे किसीने आकर पकड़ लिया। मुड़कर देखा, स्त्री है; रोता हुआ बोला—तुम आ गईं ?

कंधेपर सिर रखकर वह बेहोश हो गया।

सुरमा जिस तरह नीचेसे ऊपर भाग आई थी, नई बहू उससे आश्चर्यान्वित और शंकित होकर चुपकेसे उसके पीछे पीछे आकर दरवाजेके पास बाहर खड़ी हो गई थी; उसने सब बातें सुनीं और सब देख लिया। बहुत-सा सत्य उसके माथेके भीतर सूर्यके प्रकाशकी तरह स्पष्ट हो गया, उसकी भी छातीकी धड़कन तेज हो गई, आँखोंके बाहर कुहरा-सा छाया जा रहा था; किन्तु, उसने अपनेको सम्हालकर इस विपत्तिके समय पतिको गोदमें ले लिया।

९

छै दिन बाद अच्छी तरह होश आनेपर, सुरमाने पूछा, " भइयाकी तबीयत कैसी है ? "

दासीने जवाब दिया; " अच्छी है । "

" मैं देख आऊँ । " कहती हुई सुरमा उठी, पर फिर पड़ रही । दासीने कहा—तुम बहुत कमजोर हो अभी, और बुखार भी आ रहा है, उठो मत, डाक्टरने मना किया है ।

सुरमाने आशा की कि यज्ञ-भइया देखने आयेंगे, बहू आयेगी । दिन, दो दिन, करते करते एक सप्ताह बीत गया; तो भी कोई नहीं आया,—किसीने खबर तक नहीं ली ।

बुखार अब नहीं आता, पर कमज़ोरी बहुत है । अब उठनेकी कोशिश करनेसे शायद उठ सकती; परन्तु, जबरदस्त अभिमानके कारण उठनेकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई उसे । वह अपने मन ही मन उफन-उफनकर रोने लगी, और आँखें पोंछकर सोचती, अपनी प्रकाश और छायाकी कहानी ।

दीप्त प्रकाश और गाढ़ी छाया लेकर उन लोगोंने खेल शुरू किया था, अब प्रकाश बुझता-सा जा रहा है । मध्याह्नका सूर्य पश्चिमकी ओर झुक गया है, गाढ़ी छाया अज्ञात अन्धकारकी ओर मानो उसमें बिला जानेके लिए धीरे धीरे खिसकती जा रही है । रोते-रोते सुरमा सो गई ।

देहपर गरम हाथ रखकर किसीने मानो बुलाया—जीजी ।

सुरमा उठकर बैठ गई, बोली—यह क्या बहू ?

आँखें उसकी लाल सुर्ख़ हो रही थीं, मुँह सूखा और ओठोंपर स्याही-सी पुत रही थी । सुरमाने फ़िर पूछा—क्यों बहू, क्या हुआ है तुम्हें ?

" क्या हुआ है मुझे ? तुम मुझे इस घरमें लाई थीं, इसीसे कहने आई हूँ तुमसे, जीजी, मुझे छुट्टी दे दो । मैं जाऊँगी—"

" क्यों बहन, कहाँ जाओगी ? "

नई बहू सुरमाके पैरोंपर सिर रखकर जमीनपर लोट गई ।

सुरमाने देखा कि उसकी देह आग-सी जल रही है । बोली—यह क्या ! तुम्हें

तो खूब बुखार चढ़ा हुआ है। इतनेमें एक नौकरानी चिल्लाती हुई दौड़ी आई, बोली—जीजी, बहूजी कहाँ गई ? अरी मैया, बुखारकी बेहोशीमें ही भाग आई हैं। आज आठ दिन हुए, बेहोश पड़ी हुई हैं। मैया ! कैसे आई यहाँ ?"

"आठ दिनसे बुखार है ! डाक्टर देख रहे हैं ?"

"कोई नहीं जीजी, कोई नहीं देखता। परसों सबेरे भी बहूजी घंटे-भर तक नलके नीचे सिर किये बैठी रही थीं; इतना मना किया, पर एक न सुनी।"

* * *

शाम होनेसे पहले सुरमा यज्ञदत्तके कमरेमें जाकर रो दी—भइया, बहूका तो अब जीना मुश्किल है।

"जीना मुश्किल है ! क्या हुआ ?"

"मेरे कमरेमें चलकर देखो भइया, बहूका तो अब बचना मुश्किल है।"

दो-तीन डाक्टरोंने आकर कहा—जोरकी बाय आ गई है।

रात-भर विफल परिश्रम करके भोर होते ही वे चले गये।

रात-भर यज्ञदत्त सिरहाने बैठा रहा, कितनी ही बार मुँहके पास मुँह ले गया, पर बहू पतिको नहीं पहचान सकी।

डाक्टरोंके चले जानेपर यज्ञदत्त रो उठा—बहू, एक बार आँख खोलकर देखो, एक बार कह दो, क्षमा कर दिया।

सुरमा पाँवके पास कपड़ेमें मुँह छिपाकर अस्फुट स्वरमें बोली—भाभी, क्यों ऐसी सजा दे चलीं ?

कौन बात करता ? सम्पूर्ण मान, अभिमान, अवज्ञा और अनादरको दूर हटाकर धीरे धीरे वह अनन्तमें विलीन हो गई।

* * *

सुरमाने कहा—भइया कहाँ हैं ?

दासीने उत्तर दिया—कल वे पछाँहकी तरफ कहीं चले गये हैं।

"कब आयेंगे ?"

"मालूम नहीं, शायद जल्दी नहीं आनेके।"

"मैं कहाँ रहूँगी ?"

मुनीमजीसे कह गये हैं, जितने चाहो रुपये लेकर तुम्हारी जहाँ खुशी हो, वहाँ रहना।"

सुरमाने आकाशकी ओर देखा,—देखा, संसारका प्रकाश बुझ गया है, सूर्य नहीं है, चन्द्र नहीं है, एक तारा भी नहीं दिखाई देता। अगल-बगल देखा,—वह अस्पष्ट छाया भी न जाने कहाँ गायब हो गई है,—चारों तरफ घोर अन्धकार है। छातीकी धड़कन भी मानो उसकी बन्द होना चाहती है, आँखोंकी ज्योति भी म्लान और स्थिर होना चाहती है।

दासीने बुलाया—जीजी !

ऊपरको देखते हुए सुरमाने पुकारा—यज्ञ भइया ! उसके बाद वह धीरे धीरे लुढ़क पड़ी।

विलासी

एका दो कोस रास्ता पैदल चलकर स्कूल जाया करता हूँ, विद्यार्जन करने। मैं अकेला ही नहीं हूँ,—और भी दस-बारह लड़के हैं। जिनके घर गाँवोंमें हैं उनके लड़कोंको अस्सी फी-सदी इसी तरह विद्या-लाभ करना पड़ता है। इससे लाभके अंकोंमें अन्त तक बिलकुल शून्य न पड़नेपर भी जो पड़ता है, उसका हिसाब लगानेके लिए इन बातोंपर विचार कर लेना काफी होगा—

जिन लड़कोंको सबेरे आठ बजेके भीतर खा-पीकर, घरसे निकलके, दो कोस जाना और दो कोस आना,—चार कोस रास्ता तै करना पड़ता है,—चार कोसके मानी आठ मील ही नहीं, उससे भी बहुत ज्यादा,—वर्षाके दिनोंमें सिरपर बादलोंका पानी और पैरोंके नीचे घुटनों कीचड़ तथा गरमियोंमें पानीके बदले कड़ी धूप और कीचड़के बदले धूलके समुद्रमें तैरते हुए स्कूल और घर आना-जाना पड़ता है,—उन अभागे बालकोंपर माता सरस्वती खुश होकर वर दें या उनके कष्ट देखकर कहीं अपना मुँह छिपा लें,—यह वे खुद भी नहीं सोच सकतीं।*

इसके बाद यह कृतविद्य शिशु-दल बड़ा होकर किसी दिन गाँवमें ही बसे या भूखकी आग बुझाने और कहीं जाय,—उसकी चार-कोस-पैदल-चली विद्याका तेज आत्मप्रकाश किये बिना न रहेगा, करेगा ही। सुना है, कोई-कोई कहते हैं, अच्छा, जिनके भूखकी आग है, उनकी बात भले ही छोड़ दी जाय, मगर जिनके वह आग नहीं है, वे सब भले आदमी किस सुखकी खोजमें गाँव छोड़कर भागते हैं ! उनके वहीं बने रहनेसे तो गाँवोंकी ऐसी दुर्दशा न होती !

---

* एक ग्राम्य बालककी डायरीसे उद्धृत। उसका असल नाम जाननेकी जरूरत नहीं; और बताना भी मना है। चालू नाम एक चाहिए, सो समझ लीजिए—नेड़ा (मुण्डित-केश)।

मलेरियाकी बात नहीं छेड़ता। उसे रहने दो। मगर, इस चार कोस पैदल चलनेकी आफतके मारे कितने भद्र परिवार बाल-बच्चोंको लेकर गाँव छोड़के शहरको भाग जाते हैं, इसकी भी कोई गिनती है! उसके बाद, एक दिन लड़कोंका पढ़ना-लिखना तो खतम हो जाता है; पर तब, फिर शहरके आराम और सहूलियतोंकी रुचि लेकर उनका गाँवमें वापस आना नहीं हो सकता।

मगर, रहने दो इन फालतू बातोंको। मैं स्कूल जाता हूँ,—दो कोसके बीचमें ऐसे और भी तो दो-तीन गाँव पार होने पड़ते हैं। किसके बागमें आम पकने शुरू हो गये हैं, किस जंगलमें करोंदे काफी लगे हैं, किसके पेड़पर कटहल पकनेको हैं, किसके अमृतवान केलेकी गहर कटने-ही-वाली है, किसके घरके सामनेवाली झाड़ीमें अनन्नासका रस बदल रहा है, किसके तालाबके किनारेवाले खजूरके पेड़से खजूर तोड़कर खानेसे पकड़े जानेकी उम्मीद कम है,—इन सब बातोंकी खबर लगानेमें ही उनका समय चला जाता है; परन्तु, असल जो विद्या है,–कमस्कट्काकी राजधानीका नाम क्या है और साइबीरियाकी खानमें चाँदी मिलती है या सोना,—इन सब जरूरी विषयोंको जाननेकी उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती!

यही वजह है कि इम्तिहानके वक्त, 'एडन क्या है' पूछनेपर जवाब देता 'पर्शियाका बन्दरगाह;' और हुमायूँके बापका नाम पूछनेपर लिख आता 'तुगलक खाँ'।—और आज चालीसका कोठा पार हो जानेपर भी देखता हूँ कि उन सब विषयोंकी धारणा प्रायः वैसी ही बनी हुई है।—उसके बाद, दरजा चढ़नेके दिन मुँह फुलाकर घर लौट आता। कभी दल बाँधकर मास्टरको ठीक करनेकी सोचता, और कभी तै करता कि ऐसे बाहियात स्कूलको छोड़ देना ही ठीक है!

हमारे गाँवके एक लड़केसे बीच-बीचमें स्कूलके रास्तेमें भेंट हो जाया करती। उसका नाम था मृत्युंजय। हम लोगोंसे वह उमरमें बहुत बड़ा था। थर्ड क्लासमें पढ़ता था। कब वह पहले पहल थर्ड क्लासमें चढ़ा था, इसकी खबर हममेंसे किसीको भी नहीं थी,—सम्भवतः यह पुरातत्त्वविदोंकी गवेषणाका विषय होगा; मगर, हम लोग उसे हमेशासे थर्ड क्लासमें ही देखते आये हैं।—उसके फोर्थ क्लासमें पढ़नेका इतिहास भी कभी नहीं सुना, और सेकेण्ड क्लाससे चढ़नेकी खबर भी नहीं मिली। मृत्युंजयके बाप-मा भाई-बहन कोई भी न था; था सिर्फ गाँवके एक छोरपर एक बड़ा भारी आम-कठहरका बाग और उसमें एक खंडहर-सा घर,—और थे एक

दूरके रिश्तेके चाचा। चाचाका बस एक ही काम था,—भतीजेकी तरह-तरहसे बदनामी करना।—वह गाँजा पीता है, चरस पीता है, और भी न जाने क्या क्या करता है। उनका और एक काम था,—यह कहते फिरना कि उस बागका आधा हिस्सा उनका अपना है, नालिश करके दखल करने-भरकी देर है। हाँ, दखल उन्होंने एक दिन कर जरूर लिया; पर, वह जिलेकी अदालतमें नालिश करके नहीं,—ऊपरकी अदालतके हुक्मसे; लेकिन वह बात पीछे होगी।

मृत्युंजय खुद अपने हाथसे बनाकर खाता है; और, आमकी फसल आनेपर उस बागको किसीके हाथ उठा देता है जिससे साल-भरका उसके खाने पहरनेका खर्च चल जाता है,—और अच्छी तरह चल जाता है। जिस दिन उससे भेंट होती, उसी दिन देखता कि वह फटी-पुरानी-मैली कितावें बगलमें लिये रास्तेके एक किनारेसे चुपचाप चला जा रहा है। उसे कभी किसीके साथ अपनी तरफसे बातचीत करते नहीं देखा,—बल्कि, हम ही लोग उपयाचक होकर उसके पास जाकर बातचीत किया करते। इसका प्रधान कारण यह था कि दूकानसे मिठाई आदि खरीदकर खिलानेवाला गाँव-भरमें उसकी जोड़का, दूसरा न था। और सिर्फ लड़के ही नहीं,—बल्कि कितने ही लड़कोंके बाप भी कितनी ही बार गुप्तरूपसे अपने लड़कोंको भेजकर उससे 'स्कूलकी फी खो गई है' 'किताब चोरी चली गई है' आदि कहलाकर रुपया वसूल कर लिया करते; परन्तु, इसके लिए कृतज्ञ होना तो दूर रहा, भद्र-समाजमें कोई इतना भी कबूल नहीं करना चाहता कि उनके लड़केने उससे बात भी की है;—गाँवमें मृत्युंजयका ऐसा ही सुनाम था।

बहुत दिन तक मृत्युंजयसे मुलाकात नहीं हुई। एक दिन सुना कि वह मराऊ धरा है। और फिर, एक दिन सुना कि मालपाड़ेके एक बूढ़े माल*ने उसका इलाज करके, और उसकी लड़की बिलासीने सेवा करके, मृत्युंजयको यमराजके मुँहसे बचा लिया है।

बहुत दिनोंतक मैंने उसकी बहुत-सी मिठाईका सदुपयोग किया था,—मेरा मन उसके लिए न जाने कैसा होने लगा। एक दिन शामके अँधेरेमें छिपे छिपे मैं उसे देखने चला गया। उसके टूटे-फूटे घरमें दीवारोंकी बला नहीं है। स्वच्छन्दता-पूर्वक भीतर जाकर देखा दरवाजा खुला है, खूब उजला एक दिआ

* बंगालकी एक जाति, जो साँप-काटेका इलाज करती है। उसे ओझा भी कहा जा सकता है।

जल रहा है, और ठीक सामने ही तख्तपोशपर दूधसे साफ-सुथरे बिस्तरपर मृत्युंजय लेटा हुआ है। उसके कंकाल-सार शरीरकी ओर देखते ही मालूम हुआ कि वास्तवमें यमराजने अपनी कोशिशमें कोई कसर नहीं रखी थी; पर आखिर वह सफल न हो सका और यह सब सिर्फ उस लड़कीके ज़ोरसे हुआ। वह सिरहाने बैठी हुई पंखासे हवा कर रही थी। अकस्मात्, आदमी आते देख, चौंककर उठ खड़ी हुई। यह उसी बूढ़े सँपेरेकी लड़की थी,—बिलासी। उसकी उमर अठारहकी थी या अट्ठाईसकी,—कूत नहीं सका। परन्तु, चेहरेकी तरफ देखते ही मालूम हो गया कि उमर चाहे जितनी भी हो, मेहनतके मारे और रातों जगते जगते उसके शरीरमें अब कुछ रहा नहीं है। ठीक जैसे फूलदानीमें पानी दे-देकर जिलाये रखा हुआ बासी फूल हो। हाथसे जरा-सा छूते ही, जरा-सा हिलाते ही झर पड़ेगा।

मृत्युंजयने मुझे पहचान लिया, बोला—कौन, नेड़ा ?

मैंने कहा—हाँ।

मृत्युंजयने कहा—बैठो।

बिलासी गरदन झुकाये खड़ी रही। मृत्युंजयने दो-चार बातोंमें जो कुछ कहा; उसका सार यह था कि लगभग डेढ़ महीना होने आया वह खाटपर पड़ा है। बीचमें दस-पन्द्रह दिन बेहोशीकी हालतमें पड़ा था, अभी कुछ ही दिन हुए, वह आदमी पहचानने लगा है; और यद्यपि अभी तक वह बिस्तर छोड़कर उठ नहीं सकता, तो भी, अब किसी बातका डर नहीं है।

डरकी कोई बात न सही; पर, कम-उम्र होनेपर भी मैं इतना समझ गया कि आज भी जिसमें बिस्तर छोड़कर उठनेकी ताकत नहीं, उस रोगीको इस जंगलमें अकेली रहकर इस लड़कीने जिला लेनेका जो भार लिया है; वह कितना बड़ा गुरु भार है! दिनपर दिन, रातपर रात,—कितनी सेवा, कितनी शुश्रूषा, कितना धैर्य, कितना रतजगा,—कोई ठीक है! यह कितने बड़े साहसका काम है!

परन्तु, जिस चीजने इस असाध्य-साधनको सम्भव कर डाला उसका परिचय यद्यपि उस दिन नहीं मिला,—किन्तु, और एक दिन मिल गया।

लौटते समय वह लड़की एक और दीआ लेकर मेरे आगे आगे टूटी दीवारके आखिर तक आई। अब तक उसने एक बात भी नहीं कही थी; अब वह धीरेसे बोली—सड़क तक तुम्हें पहुँचा आऊँ क्या ?

बड़े बड़े आमके पेड़ोंसे सारा बाग मानो एक जमा हुआ अन्धकार-सा मालूम हो रहा था। रास्ता दीखना तो दर-किनार, अपना हाथ तक न दीखता था। मैंने कहा—पहुँचानेकी ज़रूरत नहीं, सिर्फ दीआ मुझे दे दो।

दीआ मेरे हाथमें देते ही उसके उत्कंठित चेहरेपर मेरी निगाह पड़ गई। आहिस्तेसे वह बोली—अकेले जानेमें डर तो न मालूम होगा? जरा आगे तक न पहुँचा आऊँ?

एक स्त्री पूछ रही है, डर तो नहीं मालूम होगा!—लिहाजा, मालूम चाहे कुछ भी हो, उत्तरमें 'नहीं' कहकर ही मैं आगे बढ़ गया।

उसने फिर कहा,—वन-जंगलका रास्ता है, जरा देख-भालकर पैर रखते हुए जाना।

मेरे रोंगटे खड़े हो गये; परन्तु, इतनी देर बाद समझा कि उद्वेग उसे किस लिए था, और क्यों वह दीआ दिखाकर उस जंगलके रास्तेको पार करा देना चाहती थी। सम्भव है, वह मेरी मनाई नहीं सुनती और साथ ही आती; परन्तु बीमार मृत्युंजयको अकेला छोड़ जानेके लिए ही शायद अन्त तक उसका मन तैयार नहीं हुआ।

बीस-पचीस बीघेका बाग था; लिहाजा रास्ता कम लम्बा न था। उस डरावने घोर अन्धकारमें हर कदम डरते डरते रखना पड़ता था; किन्तु दूसरे ही क्षण उस लड़कीकी बातसे सारा मन इस तरह आच्छन्न हो गया कि डरनेके लिए फिर समय ही नहीं मिला। बराबर यही खयाल आने लगा,—यहाँ किसी मृतप्राय रोगीको लेकर रहना कितना कठिन है! मृत्युंजय तो किसी भी क्षण मर सकता है, तब सारी रात इस जंगलमें यह लड़की अकेली क्या करेगी? कैसे यह अपनी उस रातको काटेगी?

इसी सिलसिलेमें बहुत दिन बादकी एक बात मुझे याद आती है। अपने एक रिश्तेदारके मरते समय मैं मौजूद था। अँधेरी रात थी,—घरमें बाल-बच्चे नौकर-चाकर कोई नहीं थे, सिर्फ थी उनकी सद्यःविधवा स्त्री और मैं। उनकी स्त्रीने तो शोकके आवेगमें छाती और सिर धुन-धुनकर ऐसा कांड मचा दिया कि भय होने लगा कि कहीं उनके भी प्राण न निकल जायँ। वे रो-रोकर बार-बार मुझसे पूछने लगीं कि 'जब मैं अपनी इच्छासे सह-मरण करना चाहती हूँ तो इसमें सरकारका क्या? मेरी तो अब रंचमात्र भी जीनेकी साध नहीं। इस

बातको क्या सरकारी आदमी नहीं समझ सकते ? उनके घरमें क्या स्त्रियाँ नहीं हैं ? वे क्या पत्थरके हैं ? और इस रातमें ही अगर गाँवके पाँच जने मिलकर नदी-किनारे मेरे सहमरणकी तैयारियाँ कर दें, तो थानेके लोगोंको मालूम ही कैसे होगा ?' इसी तरहकी न जाने कितनी बातें वे कहने लगीं। मगर, बैठे बैठे केवल उनका रोना सुननेसे ही तो मेरा काम चल नहीं सकता था; मुहल्लेमें खबर देना जरूरी था,—बहुत-सी चीज़ें इकट्ठी करनी थीं। परन्तु, मेरे बाहर जानेका प्रस्ताव सुनते ही वे प्रकृतिस्थ हो गईं। आँखें पोंछकर बोलीं—भइया, जो होना था, सो तो हो चुका, अब बाहर जाकर क्या होगा ? रात बीत जाने दो न !

मैंने कहा—बहुत-से काम हैं, बिना जाये नहीं चलेगा।

उन्होंने कहा—रहने दो काम,—तुम बैठो।

मैंने कहा—बैठनेसे नहीं चलेगा, एक बार खबर तो देनी ही पड़ेगी।

इतना कहकर मैंने पैर बढ़ाया ही था कि वे एकाएक चिल्ला उठीं—अरे बापरे ! मैं अकेली नहीं रह सकूँगी !

लिहाजा फिर बैठ जाना पड़ा। कारण तब यह समझमें आया कि, जिस पतिकी जीवित अवस्थामें उन्होंने बिना किसी डरके पचीस वर्ष तक अकेले घर-गिरस्ती की है, उसकी मृत्यु तो किसी तरह सही जा सकती है, पर उसका मृत शरीर इस अन्धकार-रात्रिमें पाँच मिनटके लिए भी उनसे नहीं सहा जायगा। छाती अगर किसी बातसे फटती है तो वह अपने मृत पतिके पास अकेले बैठे रहनेसे !

परन्तु, मेरा उद्देश्य उनके दुःखको तुच्छ करके दिखाना नहीं है। वह असली नहीं,—यह कहनेका भी मेरा अभिप्राय नहीं; अथवा, एक आदमीके व्यवहारसे ही उसकी अन्तिम मीमांसा हो गई, सो भी नहीं। परन्तु, ऐसी और भी एक घटना मुझे मालूम है, जिसका उल्लेख किये बिना ही मैं यह बात कहना चाहता हूँ कि सिर्फ कर्तव्य-ज्ञानके जोरसे, या बहुत समय तक एक साथ घर-गिरस्ती करनेके अधिकारसे ही कोई स्त्री भयको पार नहीं कर सकती। वह और कोई शक्ति है जिसका बहुत-से स्त्री-पुरुष सौ वर्ष तक एक साथ घर-गिरस्ती चलाते रहनेपर भी, सम्भव है, कुछ पता ही नहीं पाते।

परन्तु, सहसा उस शक्तिका परिचय जब किसी नर-नारीके निकट प्राप्त हो जाता है, तब समाजकी अदालतमें असामी बनाकर उसे दंड देनेकी आवश्यकता हो तो हो; किन्तु, मनुष्यकी जो वस्तु सामाजिक नहीं है, वह स्वयं तो उसके दुःखसे चुपचाप

आँसू बहाये बगैर किसी तरह रह नहीं सकती।

करीब दो महीने तक मृत्युंजयकी खोज-खबर नहीं ली। जिन लोगोंने गँवई-गाँव देखा नहीं है,—अथवा सिर्फ रेलके डब्बेमेंसे मुँह निकालकर देखा है, वे शायद आश्चर्यके साथ कहेंगे,—यह कैसी बात? यह भी क्या कभी सम्भव हो सकता है कि स्वयं अपनी आँखोंसे इतनी खराब हालत देख आनेपर भी दो महीनेतक फिर कुछ खबर ही नहीं ली जाय? उनकी जानकारीके लिए यह कहना जरूरी है कि यह सिर्फ सम्भव ही नहीं, बल्कि ऐसा ही हुआ करता है। किसी एकपर आफत आ पड़नेपर मुहल्ले-भरके लोग दल बाँधकर उलट पड़ते हैं, ऐसी एक किम्वदन्ती जरूर है, मालूम नहीं ऐसी दशा कभी सतयुगके गाँवोंमें थी या नहीं, परन्तु इस जमानेमें कहीं देखी हो, ऐसा तो याद नहीं पड़ता। मगर हाँ, जब कि उसके मरनेकी खबर नहीं मिली है तो वह जिन्दा जरूर होगा, इसमें शक नहीं।

इन्हीं दिनों सहसा एक दिन कानमें भनक पड़ी, मृत्युंजयके उस बागके हिस्सेदार चाचा शोर मचाते फिर रहे हैं कि, 'गया,—गया, गाँव अब बिलकुल रसातलमें चला गया! समाजमें अब मेरा नाल्तेके मित्तिर * कहलाने लायक मुँह नहीं रहा,—नालायक एक सँपेरेकी लड़कीको निकाह करके घर ले आया है! और सिर्फ निकाह ही नहीं, वह भी न हो चूल्हेमें गया, पर उसके हाथका भात तक खा रहा है! गाँवमें अगर इसका कोई शासन न रहा, तो फिर सब जंगलमें जाकर क्यों नहीं बस जाते? कोड़ोला और हरीपुरकी समाज इस बातको सुनेगी तो,—' इत्यादि इत्यादि। बस, फिर क्या था, लड़के बूढ़े सभीके मुँहपर यही एक ही बात!—'ऐं, हुआ क्या? कलिकाल क्या सचमुच ही उलटना चाहता हैं!'

चचा कहते हैं—'ऐसा होगा, यह तो मैं पहलेहीसे जानता था। सिर्फ तमाशा देख रहा था कि कहाँका पानी कहाँ जाकर मरता है! नहीं तो, वह कोई ग़ैर नहीं, पड़ौसी नहीं, अपना खास भतीजा था। मैं क्या उसे घर नहीं ले जा सकता था? क्या डाक्टर-हकीमोंसे इलाज करानेकी मेरी शक्ति नहीं थी? तो फिर किया क्यों नहीं, यह अब देखें सब लोग। मगर अब तो चुप नहीं रहा जा सकता! यह तो मित्तिर वंशका नाम ही डूबा जाता है! गाँवके मुँहपर कालिख लगी जाती है!'

---

* एक खास स्थानका वंश, जिसका उन्हें गर्व है।

तब हम सब गाँवके लोगोंने मिलकर जो काम किया, उसकी याद आते ही मैं आज भी लज्जासे मरा जाता हूँ। चचा चले नाल्तेके मित्तिर-वंशके अभिभावक बनकर—और, हम दस-बारह जने उनके साथ चले, इसलिए कि गाँवके मुँहपर कालिख न लगने पावे!

मृत्युजयके गिरे हुए घरपर पहुँचे तो उस वक्त शाम हो चुकी थी। बिलासी टूटे-फूटे बरंडेके एक तरफ बैठी रोटी बना रही थी। अकस्मात्, इतने आदमियोंको लाठी-सोटा लिये हुए आँगनमें आते देख मारे डरके नीली पड़ गई।

चचाने कोठरीके भीतर झाँककर देखा, मृत्युंजय लेटा हुआ है। बस, चटसे दरवाजेकी साँकल चढ़ाकर डरके मारे अधमरी उस लड़कीके साथ बातचीत करना शुरू कर दिया। यह तो कहना ही फजूल है कि दुनियामें किसी भी चचाने किसी भी जमानेमें भतीजेकी स्त्रीसे शायद ही कभी वैसा सम्भाषण किया हो। वह ऐसा था कि लड़की हीन सँपेरोंकी जातकी होनेपर भी उसे न सह सकी; आँखें उठाकर बोली—मेरे बापने बाबूके साथ मेरा निकाह कर दिया है, जानते हो?

चचाने कहा—अच्छा तो ठहर! इत्यादि इत्यादि। और साथ ही साथ दस बारह जने वीर-दर्पसे हुंकारते हुए उसकी गरदनपर टूट पड़े। किसीने चुटिया पकड़ी, किसीने कान पकड़े और किसीने हाथ थाम लिये,—और जिन्हें यह सुयोग न मिला, वे भी निचेष्ट न रहे!

कारण, संग्राम-क्षेत्रमें हम कापुरुषोंकी तरह चुपचाप खड़े रह सकते हैं,—हमारे विरुद्ध इतनी बड़ी बदनामी करते फिरनेमें शायद नारायणके कारिन्दोंको भी आँखकी शरम मालूम हो! यहाँपर एक अप्रासंगिक बात कह रखना चाहता हूँ। सुना है कि विलायत आदि म्लेच्छ देशोंमें पुरुषोंके मनमें एक कुसंस्कार बैठा हुआ है,—स्त्रियाँ कमजोर और निरुपाय हैं इसलिए उनपर हाथ नहीं उठाना चाहिए। यह भला कौन-सी बात हुइ! सनातनी हिन्दू इस कुसंस्कारको नहीं मानते! हम कहते हैं कि जिसके शरीरमें जोर नहीं है, उसीपर हाथ उठाया जा सकता है। फिर, चाहे वह नर-नारी कोई भी क्यों न हो।

लड़की पहले ही जो एक बार आर्तनाद कर उठी थी, उसके बाद फिर एकदम चुप हो गई। परन्तु, हम लोग जब उसे गाँवके बाहर छोड़ आनेके लिए घसीटकर ले चले, तब वह निहोरे खा-खाकर कहने लगी—बाबू, मुझे जरा-सी देरके लिए छोड़ दो, मैं रोटियाँ घरमें रख आऊँ। बाहर सियार-कुत्ते खा जायँगे,—कमजोर

आदमी ठहरे, उन्हें रात-भर भूखे रहना पड़ेगा ।

मृत्युंजय बन्द कोठरीमें पागलकी तरह सिर धुनने लगा, दरवाजेपर लातें मारने लगा, और श्राव्य-अश्राव्य भाषाका प्रयोग करने लगा । परन्तु, हम लोग उससे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए । अपने देशके कल्याणके लिए सब कुछ अकातर-भावसे सहकर उसे घसीटते हुए ले चले !

'ले चले' इसलिए कह रहा हूँ कि मैं भी बराबर उनके साथ चल रहा था । परन्तु, मालूम नहीं मुझमें कहाँ वह कमजोरी छुपी हुई थी, जिससे मैं उसपर हाथ न उठा सका । बल्कि, मैं तो भीतरसे रोने-सा लगा । उसने अत्यन्त अनुचित कार्य किया है और उसे गाँवसे बाहर निकाल देना ही उचित है; परन्तु, फिर भी हम यह कोई अच्छा काम कर रहे हैं, यह भी मेरी समझमें न आ सका । पर, यह मेरी अपनी बात है, इसे जाने दो ।

आप यह न समझ लें कि गाँवोंमें उदारताका बिलकुल ही अभाव है । हरगिज़ नहीं । बल्कि, बड़े आदमी होनेपर हम ऐसी ऐसी उदारताएँ प्रकट करते हैं कि सुनकर आप दंग रह जायँगे !

यही मृत्युंजय अगर उसके हाथका भात खानेका अक्षम्य अपराध न करता, तो हम लोगोंको इतना गुस्सा न आता । और कायस्थके लड़केके साथ सँपरेकी लड़कीका निकाह,—यह तो एक हँसीमें उड़ा देनेकी बात है । परन्तु, भात खाकर तो उसने अपना काल ही बुला लिया । वह अढ़ाई महीनेसे बीमार है तो हुआ करे, खाटपर पड़ा है तो पड़ा रहे, पर इससे क्या भात खा लेगा ? पूड़ी नहीं, सन्देश नहीं, बकरेका मांस नहीं ! अरे भात खाना तो अन्न-पाप है ! उसे तो सचमुच ही माफ नहीं किया जा सकता ! इसलिए, गँवई-गाँवके लोग संकीर्ण चित्त नहीं हैं । चार कोस पाँयन-चली विद्या जिनके पेटमें है, वे ही तो किसी दिन बड़े होकर समाजके शिरोमणि होते हैं ! देवी वीणापाणिके वरसे संकीर्णता उनमें आ कैसे सकती है ?

यही देखो न, इसके कुछ ही दिन बाद, प्रात-स्मरणीय स्वर्गीय मुखोपाध्याय महाशयकी विधवा पुत्र-वधू मानसिक वैराग्यसे दो साल तक काशी-वास करके जब गाँवको वापस लौटी, तब निन्दक लोग कानाफूसी करने लगे कि आधी सम्पत्ति उस विधवाकी ठहरी न, इसलिए इस डरसे कि कहीं वह सम्पत्ति बेहाथ न हो जाय, छोटे बाबू बहुत कोशिश और बड़े परिश्रमसे बहूजीको जहाँसे लिवा लाये हैं, वह

जगह जरूर काशी ही होगी! जो भी हो, छोटे बाबूने अपनी स्वाभाविक उदारतासे, जब गाँवकी पंचायती पूजामें दो सौ रुपये दान देकर, पाँच गाँवोंके ब्राह्मणोंको सदक्षिणा उत्तम फलाहार कराया और फिर प्रत्येक सद्-ब्राह्मणको हाथमें एक-एक काँसेका गिलास देकर बिदा किया, तब चारों तरफ 'धन्य-धन्य'की धूम मच गई। यहाँ तक कि घर आते आते रास्तेमें ही बहुत-से लोग देशके और देशके हितके लिए कामना करने लगे कि ऐसे जो सब बड़े आदमी हैं, उन सभीके घर-घर महीने महीने ऐसे सदनुष्ठान क्यों नहीं हुआ करते !

परन्तु, जाने दो। ऐसी महत्त्वकी कहानियाँ बहुत-सी हैं। युग-युगमें संचित होकर लगभग प्रत्येक ग्रामवासीके द्वारपर उनका स्तूप लग गया है। इस दक्षिण बंगालके ही बहुत-से गाँवोंमें घूम-घूमकर गौरव करने-लायक बहुत-सी बड़ी बड़ी घटनाएँ मैंने प्रत्यक्ष देखी हैं। चाहे चरित्रमें कहो और चाहे धर्ममें, समाजमें कहो और चाहे विद्यामें,—शिक्षा बिलकुल पूरी हो गई है; अब सिर्फ अँग्रेज़ोंको कसकर गाली गलौज कर सको तो बस देशका उद्धार हो जाय !

लगभग एक साल बीत गया है। मच्छड़ोंका काटना जब और नहीं सहा गया तब संन्यासगीरीसे इस्तीफा देकर मैं घर लौट आया हूँ। एक दिन दोपहरके वक्त गाँवसे दो कोस दूर मालपाड़ेमेंसे जा रहा था, अचानक देखा कि एक कुटियाके द्वारपर मृत्युंजय बैठा है। उसके सिरपर गेरुआ रंगकी पगड़ी, बड़े बड़े बाल और दाढ़ी-मूँछें, गलेमें रुद्राक्ष और काँचकी मालायें,—कौन कह सकता था कि वह मृत्युंजय है ? कायस्थका लड़का एक ही सालमें, अपनी जात खोकर बिलकुल सँपेरा हो गया ! मनुष्य कितनी जल्दी अपनी चौदह पीढ़ियोंकी जातको तिलांजलि देकर और कोई जात बन जाता है, यह एक बड़े भारी आश्चर्यकी बात है। ब्राह्मणका लड़का भंगिनकी लड़कीसे ब्याह करके भंगी हो गया और उसीका रोज़गार करने लगा, यह तो शायद आप सभी लोगोंने सुना होगा। मैंने सद्ब्राह्मणके एक लड़केको एन्ट्रेन्स पास करनेके बाद भी डोमकी लड़कीसे ब्याह करके डोम होते देखा है। अब वह सूप-डलियाँ आदि बनाकर बेचा करता है और सूअर चराया करता है ! एक अच्छे घरानेके कायस्थ-पुत्रको कसाईकी लड़कीके साथ ब्याह करके कसाई होते भी मैंने देखा है ! आज वह अपने हाथसे गायें काटकर बेचता है,—उसे देख कर किसकी ताकत है जो कहे कि वह किसी समय कसाईके सिवा और भी कुछ था ! किन्तु, सबका ही यह एक ही कारण है। इसीसे मैं सोचता हूँ कि जो

नारियाँ इस तरह इतनी आसानीसे पुरुषको खींचकर नीचे उतार सकती हैं, वे क्या उसी तरह हँसते-खेलते उन्हें ज़ोर देकर ऊपर नहीं चढ़ा सकतीं ? जिन ग्राम-वासी पुरुषोंकी सुख्याति करनेके लिए आज मैं पंच-मुख हो उठा हूँ, यह गौरव क्या सिर्फ अकेले उन्हींको मिलना चाहिए ? क्या सिर्फ अपने ही बलपर वे इतनी जल्दी नीचेकी ओर उतरे चले जा रहे हैं ? अन्दरकी ओरसे क्या उनके लिए जरा भी उत्साह, जरा भी सहायता नहीं आती ?

मगर रहने दो। झोंकमें आकर शायद अनधिकार-चर्चा कर बैठा। परन्तु, मेरे लिए मुश्किल तो यह है कि मैं किसी भी तरह यह नहीं भूल सकता कि देशके नब्बे फी-सदी नर और नारी गाँवोंमें ही रहकर आदमी होते हैं, और इसलिए कुछ न कुछ हमें करना ही चाहिए। खैर, अभी मैं कह रहा था, देखकर कौन कहेगा कि यह वही मृत्युंजय है ? परन्तु, मुझे उसने खातिरदारीके साथ बिठाया। बिलासी तालाबसे पानी लाने गई थी, मुझे देखकर वह भी बहुत खुश हुई और बार बार कहने लगी—तुम न बचाते तो उस रातको वे मुझे मार ही डालते। मेरे लिए, तुमने भी न जाने कितनी मार खाई होगी !

बातों ही बातोंमें सुना कि उसके दूसरे ही दिन वे यहाँ चले आये, और तबसे घर बनाकर यहीं सुखसे रह रहे हैं। सुखसे हैं,—यह बात मुझसे कहनेकी जरूरत नहीं हुई, सिर्फ उनके चेहरेकी तरफ देखनेसे ही मैं समझ गया।

सुना कि आज उन लोगोंको कहीं साँप पकड़ने जाना है, बयाना ले चुके हैं। वे तैयार हुए तो मैं भी संग जानेके लिए उछल पड़ा। बचपनसे ही दो बातोंपर मुझे बहुत अभिरुचि रही है। एक तो गोखुरा काला साँप पकड़कर पालना और, दूसरा मंत्र सिद्ध करना।

मंत्रसिद्ध होनेका उपाय अब तक मुझे ढूँढ़े नहीं मिला था, इसलिए, मृत्युंजयको उस्तादके रूपमें पा लेनेकी आशासे मारे आनन्दके मैं फूला न समाया। वह अपने नामी ससुरका शिष्य ठहरा, इसलिए, बड़ा भारी आदमी है। मेरा भाग्य अकस्मात् ऐसा चमक उठेगा, इसे कौन सोच सकता था ?

लेकिन काम बहुत कठिन है, और खतरा भी है, इसलिए पहले तो उन लोगोंने आपत्ति की; परन्तु, मैंने ऐसी जिद पकड़ी कि उसे एक ही महीनेके भीतर मुझे शागिर्द बना लेनेके सिवाय और कोई रास्ता ही न सूझा। मृत्युंजयने मुझे साँप पकड़नेका मंत्र और तरकीब सिखा दी और कलाईमें दवा-वाला एक ताबीज

बाँधकर बाकायदा सँपेरा बना दिया !

मंत्र क्या था, जानते हैं ? उसका आखिरी हिस्सा मुझे याद है—

“ आ रे केवट, तू मनसाका बाहन, मनसा देवी मेरी मा—
उलट-पलट पाताल फोड़—ढोंढ़ाका विष तू ले,
तेरा विष ढोंढ़ाको दे—दूधराज, मणिराज !
किसकी आज्ञासे—विषहरीकी आज्ञासे ! ”

इसके मानी क्या हैं, मैं नहीं जानता। कारण, जो इस मंत्रके स्रष्टा ऋषि थे,—निश्चय है कि कोई न कोई होंगे ही,—उनके दर्शन कभी नहीं हुए।

अन्तमें, एक दिन इस मंत्रके सत्य-मिथ्याकी चरम मीमांसा हो गई; किन्तु जब तक न हुई, तब तक मैं साँप पकड़नेमें चारों तरफ प्रसिद्ध हो गया। सभी लोग कहने लगे,—हाँ, नेड़ा है गुणी आदमी ! संन्यासी अवस्थामें कामाख्या जाकर सिद्ध हो आया है ! इतनी-सी उमरमें इतना बड़ा उस्ताद हो जानेसे ऐसी हालत हो गई कि फिर मेरे जमीनपर पैर ही न पड़ते थे।

विश्वास नहीं किया सिर्फ दो आदमियोंने। मेरा जो गुरु था, वह तो भली बुरी कोई बात ही नहीं कहता था। परन्तु, बिलासी बीच-बीचमें मुस्कराती हुई कहती, ‘ महाराज, ये सब भयंकर जानवर ठहरे, इन्हें जरा सावधानीसे हिलाया-डुलाया करो। ’ सचमुच, विष-दाँत तोड़े हुए साँपोंके मुँहसे विष निकालना आदि काम मैं ऐसी लापरवाहीके साथ करने लगा कि उसकी याद आते ही आज भी मेरा शरीर काँप उठता है।

असल बात यह है कि साँप पकड़ना कुछ कठिन नहीं है, और पकड़े हुए साँपको दो-चार दिन हँड़ियामें बन्द रखनेके बाद, चाहे उसके विष-दाँत तोड़े जायँ या न तोड़े जायँ, वह किसी तरह काटना ही नहीं चाहता। फन उठाकर काटनेका बहाना-भर करेगा, डरायेगा, पर काटेगा नहीं।

कभी कभी हम दोनों गुरु-शिष्योंके साथ बिलासी बहस किया करती थी। सँपेरोंके लिए सबसे बढ़कर नफेका रोज़गार है जड़ी बेचना,—जिसे देखकर साँपको भागते ही बने ! परन्तु, उससे पहले मामूली-सा एक काम करना पड़ता है। जिस साँपको जड़ी दिखाकर भगाना हो, पहले उसका मुँह गरम लोहेकी सींकसे कई बार दाग दो; फिर उसे चाहे जड़ी दिखाई जाय चाहे और कोई भी मामूली-सी सींक, उसे भागकर जान बचानेकी ही सूझेगी। इस कामके विरुद्ध

बिलासीको बड़ी ज़बरदस्त आपत्ति थी, वह मृत्युंजयसे कहती—देखो, इस तरहसे आदमीको नहीं ठगना चाहिए।

मृत्युंजय कहता—सभी तो ऐसा करते हैं, इसमें दोष क्या है ?

बिलासी कहती—करने दो सबको। हम लोगोंको तो खाने-पीनेकी फिकर नहीं है; फिर, हम क्यों लोगोंको झूठ-मूठ धोखा दें !

और एक बातपर मैंने बराबर लक्ष्य किया है। साँप पकड़नेके लिए बयाना आते ही बिलासी उसमें तरह-तरहसे विघ्न डालनेकी कोशिश किया करती,–आज शनिवार है, या आज मंगलवार है,—इसी तरहसे न जानें क्या क्या कह दिया करती। मृत्युंजय घरपर न रहता, तब तो वह बयानावालेको सफा ही भगा दिया करती; परन्तु मौजूद रहनेपर मृत्युंजय रुपयेका लोभ न सम्हाल सकता। और मुझे तो एक तरहका नशा-सा हो गया था। नाना प्रकारसे उसे उत्तेजित करनेमें मैं कुछ उठा नहीं रखता था। वास्तवमें, इसमें मजेके सिवा डर भी कहीं है, यह बात हमारे मनमें कभी आती ही न थी। परन्तु, इस पापका दंड एक दिन मुझे अच्छी तरह भुगतना पड़ा।

उस दिन गाँवसे डेढ़ कोस दूर एक ग्वालाके घरमें साँप पकड़ने गया था। बिलासी बराबर साथ रहती थी, आज भी थी। मिट्टीकी मढ़ैयामें ढूँढ़ते ढूँढ़ते जमीनमें एक जगह बिलका चिह्न पाया गया। हममेंसे किसीने लक्ष्य नहीं किया परन्तु, बिलासी ठहरी सँपेरेकी लड़की,—उसने झुककर कागजके कुछ टुकड़े उठाते हुए मुझसे कहा—महाराज, जरा होशियारीसे खोदना। साँप एक ही नहीं है, जोड़ा तो है ही, शायद और भी ज्यादा हों।

मृत्युंजयने कहा—ये लोग तो कहते हैं, एक ही आकर घुसा है। एक ही दिखाई दिया है।

बिलासीने कागज दिखाते हुए कहा—देखते नहीं, उन्होंने यहाँ रहनेकी जगह बनाई है ?

मृत्युंजयने कहा—कागज तो चूहे भी ला सकते हैं !

बिलासीने यहा—दोनों ही बातें हो सकती हैं। मगर, दो तो अवश्य हैं, मैं कहती हूँ।

वास्तवमें बिलासीकी बात ही ठीक निकली और ऐसी ठीक निकली कि मर्मान्तिक रूपसे। दसेक मिनटके भीतर ही एक बड़ा जबरदस्त 'खरिश-गोखुरा'

काला साँप पकड़कर मृत्युंजयने मेरे हाथमें दे दिया परन्तु मैं उसे अपनी पेटीमें बन्द करके लौटा भी न था कि मृत्यंजय " उः " करके साँस छोड़कर बाहर आ खड़ा हुआ। उसकी हथेलीकी पीठसे झर-झर खून गिर रहा था।

पहले तो सभी किं-कर्तव्य-विमूढ़-से हो गये। कारण, साँपको पकड़ने जाओ और वह भागनेके लिए व्याकुल न होकर बिलमेंसे मुँह निकालकर काट खावे, ऐसी कल्पनातीत घटना तो जीवनमें यही पहले पहल देखी थी। दूसरे ही क्षण बिलासी चिल्लाती हुई दौड़ी, उसने अपने आँचलसे उसका हाथ बाँध दिया, और जितनी भी तरहकी जड़ी बूटियाँ वह साथमें लाई थी, सब उसे चबानेको दे दीं। मृत्युंजयका अपना ताबीज तो था ही, उसपर मैंने अपना ताबीज भी उतारकर पहना दिया। आशा थी, विष उसके ऊपर अब नहीं चढ़ेगा, और मैं अपने उस ' विषहरीकी आज्ञा ' वाले मंत्रको बारबार जोर-जोरसे पढ़ने लगा। चारों तरफ भीड़ जम गई, और आस पास जितने भी गुणी लोग थे, सबको खबर देनेके लिए चारों तरफ आदमी दौड़ाये गये। बिलासीके बापको भी खबर देनेके लिए आदमी भेजा गया।

मैं अविराम गतिसे, बिना रुके हुए, मंत्र पढ़ता रहा; परन्तु, कुछ सेहत होते नहीं दिखाई दी। फिर भी, मंत्र-पाठ समान रूपसे चालू रहा। परन्तु, पन्द्रह बीस मिनट बाद जब मृत्युंजय एक बार वमन करके नाकके स्वरमें बातें करने लगा, तब तो बिलासी एकदम पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़ी। मैं भी समझ गया, मेरी विषहरीकी दुहाई अब काम नहीं आनेकी।

आसपासके और भी दो चार उस्ताद आ पहुँचे, हम लोग कभी तो एक साथ और कभी अलग अलग, तेतीस करोड़ देव-देवियोंकी दुहाई देने लगे। परन्तु विषने एक भी दुहाई नहीं मानी, रोगीकी हालत बराबर खराब होती चली गई। जब देखा गया कि अच्छी बातोंसे काम नहीं चलेगा, तब तीन चार ओझोंने मिलकर विषको ऐसी अकथ्य और अश्राव्य भाषामें गाली-गलौज करना शुरू किया कि अगर विषके कान होते तो, मृत्युंजयको छोड़नेकी तो बात ही क्या, वह देशको ही छोड़कर भाग जाता। मगर, किसीसे भी कुछ न बना। और भी आध घंटे जूझनेके बाद, रोगीने अपने पिता-माताके दिये हुए मृत्युंजय नाम और अपने ससुरके दिये हुए मंत्र-ओषधि आदि सबको मिथ्या प्रमाणित करके इहलोककी लीला समाप्त की। बिलासी अपने पतिका सिर गोदमें रखे बैठी थी, वह मानो

बिल्कुल पत्थर-सी हो गई।

जाने दो, उसके दुःखकी कहानी अब बढ़ाना नहीं चाहता। सिर्फ इतना ही कहकर खत्म कर दूँगा कि वह सात दिनसे ज्यादा अपना जिन्दा रहना न सह सकी। मुझसे एक दिन उसने सिर्फ यह कहा—महाराज, मेरे सरकी कसम है; इस कामको तुम अब कभी न करना।

मैं अपना तावीज और कवच तो मृत्युंजयके साथ ही साथ दफना चुका था, बच रही थी सिर्फ विषहरीकी आज्ञा। परन्तु, वह आज्ञा कोई मजिस्ट्रेटकी आज्ञा नहीं और साँपका विष हिन्दुस्तानियोंका विष नहीं—इस बातको भी मैं समझ गया था।

एक दिन जाकर सुना—घरमें जहरकी तो कमी थी नहीं,—बिलासीने आत्म-हत्या कर ली है; और शास्त्रोंके अनुसार, निश्चय ही वह नरक गई है! परन्तु वह कहीं भी जाय, जब मेरा अपना जानेका समय आयेगा, तब इतना तो मैं कह सकता हूँ कि वैसे ही किसी एक नरकमें जानेके प्रस्तावसे मैं पीछे न हटूँगा।

चचा साहब बगीचेपर सोलहों-आने दखल जमाकर अत्यन्त विज्ञकी भाँति चारों तरफ कहते फिरने लगे—उसकी अपघात मृत्यु न होती तो और किसकी होती? मर्द वैसी एक छोड़कर दस करे न, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं!—बहुत होगा तो जरा निन्दा हो जायगी। मगर, उसके हाथका भात खाकर मौत क्यों बुलाई भला? खुद मरा, और मेरा भी सिर नीचा कर गया। न तो कोई आग देनेवाला रहा और न कोई पिण्डा-पानी देनेवाला। श्राद्ध-शान्ति कुछ भी नहीं हुई!

गाँवके लोग एक स्वरसे कहने लगे—इसमें क्या शक है! अन्न-पाप है! बाप रे, इसका क्या कोई प्रायश्चित्त है!

बिलासीकी आत्म-हत्याकी घटना भी बहुतोंके लिए परिहासका विषय हो गई! मैं अकसर सोचा करता हूँ, यह अपराध शायद उन दोनोंने ही किया था,—परन्तु, मृत्युंजय तो एक गँवई-गाँवका लड़का था, देहातके तेल-पानीसे ही इतना बड़ा हुआ था। फिर भी, उसे इतने दुःसाहसके काममें जिस वस्तुने प्रवृत्त कर दिया था, उसे किसीने आँख खोलकर देखा तक नहीं!

मुझे मालूम होता है, जिस देशके नर-नारियोंमें परस्पर हृदय जय करके विवाह करनेकी रीति नहीं है,—बल्कि, वह निन्दाकी चीज़ है, जिस देशके स्त्री-पुरुष आशा करनेके सौभाग्य और आकांक्षा करनेके भयंकर आनन्दसे हमेशाके लिए

वंचित हैं, जिन्हें विजयका गर्व और पराजयकी व्यथा,—इनमेंसे किसीको भी अपने जीवनमें वहन नहीं करना पड़ता, जिनके भूल करनेका दुःख और भूल न करनेका आत्म-प्रसाद दोनोंमेंसे एक भी बला नहीं, जिनके प्राचीन और बहुदर्शी विज्ञ समाजने बहुत ही सावधानीसे देशके लोगोंको सब तरहके हंगामोंसे अलग रहकर आजीवन केवल भले-आदमी बने रहनेकी व्यवस्था कर दी है,—इसीसे विवाह-संस्कार जिनके लिए महज एक कन्ट्राक्ट (Contract) है,—फिर वह वैदिक मंत्रोंसे डाकुमेन्ट (document) शुदा चाहे जितना पक्का ही क्यों न हो गया हो, उस देशके लोगोंमें इतना सामर्थ्य नहीं कि वे मृत्युंजयके अन्न-पापका कारण समझ सकें। बिलासीका जिन लोगोंने मज़ाक उड़ाया था, वे सभी साधु गृहस्थ और गृहणियाँ हैं,—उन सबको अक्षय सती-लोक प्राप्त होगा, यह भी मैं जानता हूँ; परन्तु वह सँपेरेकी लड़की जब एक पीड़ित और शय्यागत रोगीको तिल तिल करके जीत रही थी, उसके उस समयके गौरवका एक कण भी शायद आज तक उनमेंसे किसीने आँखों नहीं देखा। मृत्युंजय, हो सकता है कि, एक बहुत ही तुच्छ आदमी हो; किन्तु, उसका हृदय जीतकर उसपर कब्जा करनेका आनन्द तो तुच्छ नहीं था, उसकी वह सम्पदा तो मामूली नहीं थी !

इस देशके लोगोंके लिए इस चीजका समझ सकना कठिन है। मैं भूदेव मुखर्जीके 'पारिवारिक निबन्धों' को भी दोष नहीं दूँगा और शास्त्रीय तथा सामाजिक विधि-विधानोंकी भी निन्दा न करूँगा। और करनेपर मुँहपर जवाब देते हुए जो कहेंगे कि,—यह हिन्दू-समाज अपने विधि-विधानोंके जोरसे ही, इतनी शताब्दियोंके इतने विद्रोह-तूफानोंके बाद भी जीवित है, मैं उनकी भी अत्यंत भक्ति करता हूँ। प्रत्युत्तरमें उनसे मैं यह हरगिज़ न कहूँगा कि जीवित रहना ही चरम सार्थकता है;—ऐसे तो अतिकाय हाथी तक लुप्त हो गये हैं और तिलचट्टे जीवित हैं। मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि बड़े आदमीके 'नन्द-गोपाल'की तरह दिन-रात आँखोंमें और गोद ही गोदमें रहनेसे वह अच्छा तो रहेगा,— इसमें सन्देह नहीं, परन्तु, बिलकुल ही तिलचट्टेकी तरह जिलाये रखनेकी अपेक्षा अगर उसे एक बार गोदसे उतारकर और भी पाँच आदमियोंकी तरह दो चार कदम पैदल चलने दिया जाय; तो शायद वह प्रायश्चित्त करने-लायक पाप न होगा।

एकादशी बैरागी

कालीदह ब्राह्मण-प्रधान गाँव है। यहाँके गोपाल मुखोपाध्यायका लड़का अपूर्व बचपनसे ही लड़कोंका सरदार था। अबकी बार जब वह पाँच-छै बरस कलकत्तेके मेसमें रहकर ऑनर समेत बी० ए० पास करके घर लौटा, तब गाँवमें उसकी प्रभाव-प्रतिष्ठाका कोई ठिकाना न रहा। गाँवमें एक जीर्ण-शीर्ण स्कूल था। बराबरकी उमरवाले उसके साथियोंने इसी बीचमें अपना पढ़ना लिखना समाप्त करके, सन्ध्या-पूजा छोड़कर, दस-आना छै-आना बाल छँटवाना शुरू कर दिया था; परन्तु, कलकत्तेसे लौटे हुए इस ग्रेजुएट छोकरेके सिरके बाल समान और उसके बीचों-बीच एक मोटी चोटीकी स्थापना देखकर,—सिर्फ छोकरे ही क्यों, उनके बाप-ताऊ तक आश्चर्यसे दंग रह गये। अपूर्व, शहरकी सभा-समितियोंमें शामिल होकर, ज्ञानी पुरुषोंके भाषण सुनकर, सनातन हिन्दू धर्मके अनेक निगूढ़ रहस्योंका मर्मोद्भेद करके, देश पहुँचा था। अब वह अपने साथियोंमें इसी बातका मुक्त कंठसे प्रचार करने लगा कि इस हिन्दू धर्मके समान सनातन धर्म और नहीं है। कारण, इसकी प्रत्येक व्यवस्था विज्ञान-सम्मत है। चोटीकी वैद्युदिक उपयोगिता, शरीर-रक्षाके बारेमें सन्ध्या-पूजाकी परम उपकारिता, कच्चे केले खानेकी रासायनिक प्रतिक्रिया इत्यादि अनेक अज्ञात तत्त्वोंकी व्याख्या सुनकर गाँवके बच्चे-बूढ़े-जवान सभी मुग्ध हो गये; और, उसका फल यह हुआ कि थोड़े ही समयके भीतर लड़कोंने चोटीसे शुरू करके सन्ध्या-पूजा, एकादशी, पूर्णिमा और गंगा-स्नानतककी ऐसी धूम मचा दी कि उनके सामने घरकी औरतों तकने हार मान ली।

हिन्दू धर्मके पुनरुद्धार और देशोद्धार इत्यादिकी जल्पना-कल्पनासे युवकोंमें एकदम शोर मच गया। बड़े बूढ़े कहने लगे—हाँ, गोपाल मुखर्जीके भाग्यको

सराहेंगे ! लक्ष्मीजीकी जैसी सुदृष्टि है, सन्तान भी वैसी ही पैदा हुई ! नहीं तो, आजकलके जमानेमें इतनी अँगरेजी पढ़-लिखकर भी इस उमरमें धर्ममें ऐसी मति-गति कितनोंमें पाई जाती है ! लिहाजा देशमें अपूर्व एक अपूर्व वस्तु हो उठा। उसकी हिन्दू-धर्म-प्रचारिणी, धूम्रपान-निवारिणी और दुर्नीति-दलनी—इन तीन तीन सभाओंकी उछल-कूदसे गाँवके किसान-मजदूरोंका दल तक संत्रस्त हो उठा। पाँचकौड़ी तेवरने ताड़ी पीकर अपनी स्त्रीको पीटा है, यह सुनकर अपूर्वने पूरे दल-बलके साथ उसके घर जाकर उसे ऐसा डाँटा-डराया कि दूसरे ही दिन उसकी स्त्री अपने पतिको लेकर मायके भाग गई ! भगा कावरा बहुत रात बीते, बम्बेसे मछली पकड़कर घर लौटते समय, गाँजेकी झोंकमें शायद 'विद्या-सुन्दर' नाटककी मालिनीका गाना गा रहा था; ब्राह्मणपाड़ेके अविनाशने वह सुन लिया तो उसने उसकी नाकसे खून बहा दिया,—तब कहीं छोड़ा ! दुर्गा डोमका चौदह पन्द्रह सालका लड़का बीड़ी पीता हुआ मैदानमें जा रहा था; उसपर अपूर्वके दलके एक छोकरेकी निगाह पड़ गइ; बस, उसने उसकी पीठपर जलती हुई बीड़ी दागकर फलक उठा दिया !

इस तरह अपूवकी हिन्दूधर्म-प्रचारिणी और दुर्नीति-दलनी सभाने भानुमतीके आमके पेड़की तरह बातकी बातमें फूलों और फलोंसें कालीदह गाँवको छा दिया। जब गाँवकी मानसिक उन्नतिकी तरफ नज़र दौड़ाई गई तो अपूर्वने देखा कि स्कूलकी लाइब्रेरीमें शशिभूषणके डेढ़ मानचित्र और बंकिमचन्द्रके अढ़ाई उप-न्यासोंके सिवा और कुछ नहीं है। इस दीनताके लिए उसने हेड-मास्टरको बहुत बुरी तरह फटकारा और वह स्वयं ही लाइब्रेरीके संघटन-कार्यमें कमर कसकर लग गया। उसके सभापतित्वमें चन्देकी लिस्ट, नियम-कानूनोंकी तालिका और पुस्तकोंकी सूची बननेमें विलम्ब न हुआ। इतने दिनों तक लड़कोंके धर्म-प्रचारक उत्साहको तो गाँववाले किसी तरह सहते आये थे; परन्तु, अब दो ही एक दिनके अंदर उनका चन्दा वसूल करनेका उत्साह गाँवके नीच-ऊँच सभी गृहस्थोंके लिए ऐसा भयानक हो उठा कि खाता बगलमें दबाये किसी भी लड़केको आते देखते ही वे घरके दरवाजे-जंगले सब बन्द कर देने लगे। साफ देखनेमें आया कि गाँवमें धर्म-प्रचार और दुर्नीति-दलनका रास्ता जितना चौड़ा पाया गया था, लाइब्रेरीके लिए धन-संग्रहका मार्ग उसके शतांशका एक-अंश भी प्रशस्त नहीं है। अपूर्व यह सोच ही रहा था कि क्या करना चाहिए, इतनेमें सहसा एक

जबरदस्त सुमार्ग उसके दृष्टिगोचर हो गया !

स्कूलके पास ही एक परित्यक्त गिरा हुआ मकान था, उसकी ओर अपूर्वकी दृष्टि आकृष्ट हुई। सुननेमें आया कि वह ‘ एकादशी बैरागी ’ का मकान है। खोज करनेपर मालूम हुआ, कि कोई दस वर्ष पहले किसी एक गर्हित सामाजिक अपराधके कारण ग्रामके ब्राह्मणोंने, धोबी-नाई-मोदी आदि बन्द करके, उसे घर छुड़ाकर गाँवसे निर्वासित कर दिया है और अब वह गाँवसे दो कोस उत्तरकी ओर बारुइपुर गाँवमें रहता है। यह आदमी, सुनते हैं, रुपयोंका ‘ घड़ियाल ’ है। इसका पुराना नाम क्या है, कोई नहीं कह सकता,—भंडा-फोड़ हो जानेके डरके मारे बहुत दिनोंसे उसका व्यवहार नहीं किया गया; इस कारण, लोगोंकी स्मृतिसे वह बिलकुल ही विलुप्त हो गया है। तबसे इसी ‘ एकादशी ’ नामसे बैरागी महाशय सुप्रसिद्ध हैं।

अपूर्वने ताल ठोंककर कहा—रुपयेका घड़ियाल ! सामाजिक कदाचार ! तब तो, यही साला लाइब्रेरीका आधा भार उठानेके लिए बाध्य है। नहीं तो, वहाँ भी धोबी-नाई-मोदी बन्द। बारुईपुरके जमींदार तो जीजीके ममिया-ससुर हैं !

लड़के उन्मत्त हो उठे, और शीघ्र ही डोनेशन (सहायता) की लिस्टमें बैरागीके नामपर एक मोटी-सी रकम चढ़ा दी गई। एकादशीसे रुपये वसूल किये जायेंगे। न होंगे, तो अपूर्व अपनी जीजीके ममिया-ससुरसे कहकर वहाँके भी धोबी-नाई आदि बन्द करा देगा,—इस समाचारके मिलते ही पं० रसिक स्मृतिरत्न लाइब्रेरीके मंगलार्थ स्वयं-प्रार्थी होकर परामर्श दे गये, कि देखना है खूब बड़ी रकम बिना दिये, वह महापापी अपना यह कालीदहका घर कैसे बचाता है ! गाँवमें न रहनेपर भी अपने घरसे एकादशीकी अत्यन्त ममता है, यह बात रसिक पंडित-से छिपी न थी।

लगभग दो साल पहले, इस जमीनको खरीदकर अपने बगीचेमें मिला लेनेके लिए पंडितजी, भरसक कोशिश करके भी, सफल-मनोरथ न हो सके थे। उनके प्रस्ताव करनेपर उस समय एकादशीने अत्यन्त साधु व्यक्तिकी तरह कानमें उँगली देकर कहा था, ‘ ऐसी आज्ञा न दीजिएगा पंडितजी महाराज, उस जरा-सी ज़मीनके बदले ब्राह्मणसे दाम लेना, यह मुझसे कभी न होगा। वह ब्राह्मणोंकी सेवामें लगता, तो मेरी सात पीढ़ियोंका सौभाग्य होता। ’ इसपर स्मृतिरत्नजीने अत्यन्त पुलकित-चित्तसे उसकी देव-द्विज-भक्तिकी लक्ष-कोटि प्रशंसा करके असंख्य

आशीर्वाद दे डाले। इसके बाद एकादशीने हाथ जोड़कर सविनय निवेदन किया था "परन्तु, मैं ऐसा अभागी हूँ पंडितजी, कि मेरी सात-पीढ़ीसे चला आया हुआ यह घर किसी भी तरह मुझसे नहीं छोड़ा जाता। पिताजी मरते समय सिरकी सौगन्ध देकर कह गये थे,—खानेको भी न मिले बेटा, तो भी अपना घर मत छोड़ना!" इत्यादि इत्यादि। उस विद्रूपको स्मृति-रत्नजी भूले नहीं हैं।

पाँचेक दिन बाद, एक दिन, सबेरे अपूर्वका दल दो कोस पैदल चलकर एकादशीके दरवाजेपर जाकर हाजिर हो गया। मिट्टीका घर था; पर था खूब साफ-सुथरा। देखनेसे मालूम होता था कि लक्ष्मीका निवास है। अपूर्व या उसके दलके और किसीने एकादशीको पहले कभी देखा नहीं था; इसलिए, चंडीमंडपमें पैर रखते ही उनका मन अरुचिसे भर गया। यह आदमी चाहे रुपयोंका घड़ियाल हो, चाहे मगर-मच्छ; पर, यह तो निःसन्देह है कि लाइब्रेरीके लिए इससे नन्हीं-सी मछलीका भी काम नहीं निकल सकता।

एकादशीके महाजनीका पेशा होता है। उमर साठसे ऊपर हो गई है। उसका सारा शरीर जैसा कृश है, वैसा ही शुष्क। गला तुलसीकी मालाओंसे भर रहा है। दाढ़ी-मूँछ सफाचट, और चेहरेकी तरफ देखनेसे मालूम नहीं होता कि कहीं भी उसमें लेशमात्र भी रस-कस है। ईख मशीनके पेषणसे अपना रस निकालकर जैसे अन्तमें खुद ही ईंधन बनके उसे जलाकर सुखा देती है, उसी तरह यह आदमी भी मानो मनुष्यको जलाकर शुष्क कर डालनेके लिए ही अपने सम्पूर्ण मनुष्यत्वको निचोड़कर विसर्जन करनेके लिए महाजन बना बैठा है। उसका सिर्फ चेहरा देखकर ही अपूर्वका मन ठण्डा हो गया। चण्डी मण्डपमें एक मामूली-सा फर्श बिछा हुआ है। बीचमें एकादशी विराजमान है। उसके सामने एक लकड़ीका हाथ-बाक्स है और एक तरफ बही-खातोंका ढेर लगा है। एक बूढ़ा-सा गुमाश्ता गलेमें जनेऊ लटकाये उघड़े-बदन बैठा सिलेटपर ब्याजका हिसाब लगा रहा है; और सामने अगल-बगल बरंडेमें; खंभोंकी ओटमें, नाना उमर और नाना अवस्थाके स्त्री-पुरुष म्लान मुँह लिये बैठे हुए हैं। कोई कर्ज लेने, कोई ब्याज देने, और कोई सिर्फ मुद्दत बढ़ानेकी भीख माँगने आया है; मगर, कर्ज चुकानेके लिए कोई बैठा हो, ऐसा तो किसीके चेहरेसे नहीं मालूम हुआ।

अकस्मात् बहुतसे अपरिचित शरीफ घरोंके लड़कोंको देखकर एकादशीने

आश्चर्यान्वित होकर उनकी तरफ देखा। गुमाश्तेने सिलेट रखते हुए कहा—कहाँसे आ रहे हैं ?

अपूर्वने कहा—कालीदहसे।

" महाशय, आप लोग ? "

" हम सभी ब्राह्मण हैं। "

ब्राह्मणका नाम सुनते ही एकादशीने बड़ी इज्जतके साथ खड़े होकर गरदन झुकाकर प्रणाम किया; और कहा—बैठनेकी आज्ञा हो।

सबके बैठ जानेपर एकादशी खुद भी बैठ गया। गुमाश्तेने प्रश्न किया—आप लोगोंको क्या चाहिए ?

अपूर्वने लायब्रेरीकी उपयोगिताके सम्बन्धमें थोड़ी-सी भूमिका बाँधकर चन्देकी बात छेड़ी, तो देखा कि, एकादशीकी गरदन दूसरी तरफ मुड़ गई है। वह खंभेके पीछे बैठी हुई एक स्त्रीको सम्बोधित करके कह रहा है,—तुम क्या पागल हो गई हो हारूकी माँ ! ब्याज तो हुआ सिर्फ सात रुपये दो आने, सो उसमेंसे भी दो आने छुड़वा लोगी ! इससे तो, गलेपर पैर दे जीभ निकालकर मुझे मार ही क्यों नहीं डालतीं ?

इसके बाद दोनोंने ऐसी खींचा-तानी शुरू कर दी,—मानो, इन्हीं दो आने पैसोंपर उनका जीवन निर्भर हो। मगर हारूकी माँ जैसी दृढ़प्रतिज्ञ थी, एकादशी भी वैसा ही अटल था। देर होते देख अपूर्व उन दोनोंके वाग्वितण्डाके बीचमें ही बोल उठा—हमारी लाइब्रेरीके बारेमें—

एकादशीने मुखातिब होकर कहा—जी, अभी सुनता हूँ,—क्यों रे नफर, तू क्या हमें सिरपर पाँव रखके डुबो देना चाहता है ? वे दो रुपये तो अभी तक चुकाये नहीं, फिर और एक रुपया माँगने किस मुँहसे चला आया ? हम पूछते हैं, ब्याज-याज भी कुछ लाया है ?

नफरके अंटीमेंसे एक आना पैसा निकालकर देते ही एकादशीने त्योरियाँ चढ़ाते हुए कहा—तीन महिने न हो गये रे ? और दो पैसे कहाँ हैं ?

नफरने हाथ जोड़ते हुए कहा—और नहीं हैं मालिक, धाड़ाके लड़केसे न जाने कितने हाथ-पाँव जोड़कर एक आना उधार लाया हूँ, बाकी दो पैसे अगली हाटके दिन दे जाऊँगा।

एकादशीने गरदन बढ़ाकर उसकी अंटीकी तरफ देखते हुए कहा—देखूँ तेरी

वह अंटी ?

नफरने अपनी बाईं अंटी दिखाकर अभिमानके साथ कहा—दो पैसेके लिए झूठ बोलूँगा मालिक ? जो सुसरा पैसे लाकर भी तुम्हें धोखा दे, उसके मुँहमें कीड़े पड़ें,—कह दिया मैंने।

एकादशीने तीक्ष्ण दृष्टिसे देखते हुए कहा—जैसे तू चार पैसे उधार ला सका, वैसे ही और दो पैसे तुझसे नहीं लाते बने ?

नफरने गुस्सेमें आकर कहा—कसम न खा रहा हूँ मालिक ! मुँहमें कीड़े पड़ें–

अपूर्वकी देहमें आग लग रही थी, उससे और नहीं सहा गया, वह बोल उठा—आप तो अच्छे आदमी मालूम होते हैं !

एकादशीने अपूर्वकी तरफ सिर्फ एक बार देख-भर लिया—कुछ कहा नहीं। परानू बाग्दी सामनेके आँगनसे जा रहा था; एकादशीने हाथके इशारेसे उसे बुलाकर कहा—परानू, नफरकी काँछ तो जरा खोल देख रे, पैसे दो बँधे हैं या नहीं ?

परानूके आगे बढ़ते ही नफरने गुस्सेमें आकर अपनी काँछकी खूँटमेंसे दो पैसे खोलकर एकादशीके सामने फेंक दिये। एकादशीको उसकी इस बेअदबीपर जरा भी गुस्सा न आया। गम्भीरताके साथ दो पैसे बॉक्समें डालकर उसने गुमाश्तेसे कहा—घोषालजी, नफरके नाम सूद जमा कर लीजिए। और क्यों, एक रुपया लेकर तू अब क्या करेगा रे ?

नफरने कहा—बिना जरूरतके ही थोड़े आया हूँ साहब ?

एकादशीने कहा—आठ आना ले जा न। पूरा रुपया ले जाकर तो इधर-उधर कर देगा, और क्या ?

उसके बाद बहुत घिसा-घिसी करके नफर चौधरी बारह आने कर्ज लेनेमें सफल हुए।

अबेर बहुत हो रही थी। अपूर्वके साथी अनाथनाथने चन्देकी लिस्ट एकादशीके सामने फेंककर कहा—जो देना है, दे दीजिए साहब, हम अब और नहीं ठहर सकते।

एकादशीने लिस्ट उठाकर करीब पन्द्रह मिनट तक उसे शुरूसे आखिर तक खूब अच्छी तरह गौरके साथ देखा और अन्तमें एक उसास लेकर उसे वापस करते हुए कहा—मैं बूढ़ा आदमी हूँ, मुझसे चन्दा क्यों ?

अपूर्वने किसी तरह अपने गुस्सेको सम्हालते हुए कहा—बूढ़े आदमी रुपय

न देंगे, तो क्या छोटे लड़के देंगे ? वे पायेंगे कहाँ, आप ही बताइए ?

बूढ़ेने इसका कोई उत्तर न देकर कहा—इस्कूलको तो बीस-पचीस साल हो गये,—कहाँ, इतने दिनोंसे तो किसीने लाइब्रेरीकी बात नहीं उठाई बाबा ? खैर, जाने दो, यह कोई बुरा काम नहीं,—हमारे लड़के-बच्चे किताबें पढ़ें चाहे न पढ़ें, हमारे गाँवके लड़के तो पढ़ेंगे। क्या कहते हो घोषालजी ?

घोषालने गरदन हिलाकर क्या कहा, कुछ समझमें न आया। एकादशीने कहा—अच्छा चन्दा तो दे दूँगा मैं, किसी रोज आकर ले जाइएगा चार आने पैसे।—क्यों घोषालजी, इससे कम तो अच्छा नहीं मालूम होता! इतनी दूरसे आकर लड़कोंने घेरा है,—कुछ भी हो, नाम फैला हुआ है, इसीसे तो! और भी लोग हैं, उनके पास तो कोई माँगने नहीं जाता,—क्यों जी, है कि नहीं ?

मारे गुस्सेके अपूर्वके मुँहसे बात नहीं निकली। अनाथने कहा—इन्हीं चार आने पैसोंके लिए हम लोग इतनी दूरसे आये हैं ? सो भी, और किसी दिन आकर ले जाने होंगे ?

एकादशी मुँहसे एक शब्द करके सिर हिल-हिलाकर कहने लगा—देख तो ली हालत आपने, हकके छै पैसे वसूल करनेमें नालायकोंसे कैसा ओछापन करना पड़ता है! सो, इस पाटके बिके बिना तो देनेका सुभीता—

मारे गुस्सेके अपूर्वके ओठ काँपने लगे; बोला सुभीता तो सब हो जायगा जब यहाँ भी नाई-धोबी बन्द कर दिये जायँगे। नीच पिशाच कहींका, सारी देहमें तिलक चन्दन लगाकर जात खोकर वैष्णव भगत बना बैठा है, अच्छा!

विपिनने खड़े होकर एक उँगली उठकर धमकाते हुए कहा—बारुईपुरके राखालदास बाबू हमारे सम्बन्धी हैं,—याद रहे बैरागी!

बूढ़ा बैरागी इस अचिन्तनीय काण्डसे हतबुद्धि होकर देखता रह गया। पर, गाँवके लड़कोंके अकस्मात् इतने क्रोधका कारण उसकी समझमें ही नहीं आया। अपूर्वने कहा—गरीबोंका खून चूस-चूसकर मोटा होना तुम्हारा निकालेंगे, तब छोड़ेंगे!

नफर अब तक बैठा हुआ था; उसकी काँछमेंसे दो पैसे निकलवा लेनेके कारण गुस्सेमें वह भीतर ही भीतर उफन रहा था। उसने कहा—जो कहा मालिकने, ठीक कहा। बैरागी नहीं, पिशाच है! देख तो लिया आँखोंके सामने, किस तरह मुझसे दो पैसे वसूल कर लिये!

बूढ़ेपर फटकार पड़नेसे, उपस्थित सभी कोई मन ही मन निर्मल आनन्दका

उपभोग करने लगे। उनके चेहरेका भाव ताड़कर विपिन उत्साहित होकर आँख मिचकाता हुआ बोल उठा—तुम लोग तो भीतरकी बातें जानते नहीं,—लेकिन हमारे तो ये गाँवके आदमी हैं, हम लोग सब जानते हैं। क्यों जी बुढ़ऊ, हमारे गाँवमें क्यों तुम्हारे नाई-धोबी बन्द किये गये थे, कह दूँ?

बात पुरानी थी। सब कोई जानते थे, एकादशी सद्गोपोंके× घर पैदा हुआ है,—जात-वैष्णवोंमें नहीं। उसकी एक-मात्र सौतेली बहन प्रलोभनमें पड़कर कुलके बाहर निकल गई; और तब एकादशी उसे बड़े दुःखसे बहुत ढूँढ़-खोजकर वापस लाया। परन्तु, इस कुत्सित आचरणसे गाँवके लोग विस्मित और अत्यंत क्रुद्ध हो उठे। फिर भी, एकादशी बिना मा-बापकी इस सौतेली छोटी बहनको किसी भी तरह न छोड़ सका। संसारमें उसके और कोई भी न था,—इसीको उसने बचपनसे गोदों खिला-पिलाकर इतना बड़ा किया था; बड़े ठाठ-बाटसे ब्याह दिया था; और फिर;—कम उमरमें विधवा हो जानेपर, अपने इसी भइयाके घर आकर वह आदर-जतनके साथ रहने लगी थी। उमर और बुद्धिके दोषसे उस बहनके इतने जबरदस्त पद-स्खलनसे बूढ़े-बेचारेने रोते-रोते घर भर दिया। खाना-पीना-सोना छोड़कर गाँव-गाँव और शहर-शहर छानकर अन्तमें जब बहनका पता लगाके उसे घर वापस ले आया तब गाँववालोंके निष्ठुर शासनको सिर-माथे रखकर, अपनी इस लज्जिता, अत्यन्त अनुतप्ता, अभागिनी बहनको फिर उसे घरसे निकालकर खुद प्रायश्चित्त करके जातमें शामिल होनेके लिए वह किसी भी तरह राजी न हो सका। उसके बाद गाँवमें उसके नाई-धोबी आदि बन्द कर दिये गये। अन्तमें, एकादशी निरुपाय हो भेष लेकर वैष्णव हो गया और इस बारुईपुरमें भाग आया। इस बातको सभी जानते थे; फिर भी, किसी दूसरे आदमीके मुँहसे वह कलंक-कहानीका माधुर्य लेनेके लिए लोग उद्ग्रीव हो उठे। परंतु, एकादशी लज्जासे, भयसे बिलकुल सिटपिटा-सा गया। पर, वह अपने लिए नहीं, अपनी छोटी बहनके लिए। प्रथम यौवनके अपराधने गौरीके हृदयके भीतर जो गहरा घाव कर दिया था, आज भी वह वैसेका वैसा बना हुआ है,—जरा भी सूखा नहीं है; वृद्ध एकादशी इस बातको अच्छी तरह जानता है, कहींका कोई जरा-सा इशारा भी गौरीके कानोंतक जाकर उसके दर्दको हिला-डुलाकर ताजा न कर दे,—इस आशंकासे एकादशी विवर्णमुख चुपचाप टुकुर-टुकुर देखता रहा। उसकी इस सकरुण दृष्टिकी नीरव

× 'सद्गोप' बंगालकी एक जाति है और 'वैष्णव' एक सम्प्रदाय। पर अब वैष्णव एक जातिके रूपमें ही समझे जाते हैं।

विनीत प्रार्थनापर और किसीकी निगाह नहीं पड़ी; पर, अपूर्व सहसा इस बातको ताड़ गया और मारे आश्चर्यके अवाक् हो गया।

विपिन कहने लगा—हम लोग क्या भिखारी हैं, जो ऐसी कड़ी धूपमें दो कोस रास्ता पैदल आकर चार आने पैसे भीख माँगने आये हैं ? सो भी आज नहीं,—न जाने कब किस आसामीका पाट बिकेगा, उसका पता लगा कर हम लोगोंको और एक दिन पैदल दौड़ना पड़ेगा ! तब कहीं अगर बाबू साहबकी मेहेरबानी हो जाय ! लेकिन लोगोंका खून चूसकर जो सूद खाया करते हो बुड्ढे ! सोचा होगा, कि जोंकपर जोंक नहीं बैठती, क्यों ? अगर मैं यहाँ भी तुम्हारा हाल-बेहाल न कर दूँ तो मेरा नाम विपिन भट्टाचार्य नहीं। छोटी जातके पास पैसा हो गया है न, इसीलिए आँख-कानसे दिखाई-सुनाई नहीं देता, क्यों ?—चलो जी अपूर्व, हम लोग चलें,—फिर जो कुछ करना होगा, किया जायगा। कहकर वह अपूर्वका हाथ पकड़कर खींचने लगा।

करीब ग्यारह बज चुके थे; खासकर इतना रास्ता पैदल आनेके कारण अपूर्वको बहुत जोरकी प्यास लग रही थी, और कुछ देर पहले उसने नौकरसे पानी लानेको कह भी दिया था। उसके बाद इस कलह-विवादमें इसकी उसे याद ही नहीं रही। इतनेमें एक हाथमें पानीका गिलास और दूसरे हाथमें बतासोंसे भरी रकाबी लिये हुए एक सत्ताईस-अट्ठाईस वर्षकी विधवा स्त्रीने जब पासके दरवाजेसे प्रवेश किया, तब उसे अपने पानी मँगानेकी बात याद हो आई। गौरीको देखनेसे उसे कोई नीच जातिकी हरगिज़ नहीं कह सकता। सफेद पट्ट-वस्त्र पहनकर,—स्नान करके तुरंत ही शायद संध्या-पूजा करने बैठी होगी; नौकरसे ब्राह्मणने जल मँगाया है,—सुनते ही वह संध्या-पूजा छोड़कर दौड़ी आई है। आनेके साथ ही उसने कहा—आप लोगोंमेंसे किसीको जल चाहिए था न ?

विपिनने कहा—पाटकी साड़ी पहन लेनेसे ही क्या तुम्हारे हाथका पानी पी लेंगे हम लोग ? अपूर्व, यही हैं वे विद्याधरी, देख लो !

पलक मारते ही उस विधवाके हाथसे बतासेकी रकाबी झन्न-से नीचे गिर पड़ी; और उस असीम लज्जाके भावको अपनी आँखोंसे देखकर, अपूर्व स्वयं शरमके मारे गड़ गया। उसने क्रोधके साथ विपिनको कुहनी मारते हुए कहा—यह सब क्या बन्दर-पन कर रहे हो ? जरा भी तुम्हें समय देखकर बोलनेका शऊर नहीं है !

विपिन गँवई-गाँवका आदमी ठहरा,—झगड़ेके समय दूसरेका मुँहके सामने

अपमान करनेमें नर-नारीका भेदाभेद न रखनेवाला वह निष्पक्ष वीर पुरुष है; इसलिए, अपूर्वके बिगड़ने पर और भी निष्ठुर हो उठा। लाल लाल आँखें निकालकर जोरसे बोला—क्यों, कोई झूठी बात कह रहा हूँ क्या ? उसकी इतनी हिम्मत हो गई कि ब्राह्मण घरानेके लड़कोंके लिए पानी लाती है ! मैं बीच बाजारमें भंडा फोड़ सकता हूँ, जानते हो ?

अपूर्व समझ गया, अब तर्क नहीं चल सकता और उससे अपमानकी मात्रा बढ़नेके सिवा घट नहीं सकती। बोला—मैंने ही लानेको कहा था विपिन, तुम बिना जाने यों ही झगड़ा मत करो, चलो, अब हम लोग चल दें।

गौरी रकाबी उठाकर, किसीकी भी तरफ बिना देखे, चुपचाप दरवाजेके पीछे जाकर खड़ी हो गई और वहाँसे बोली—भइया, ये चन्दा लेने आये थे, तुमने दे दिया ?

एकादशी अब तक विह्वलकी भाँति बैठा था, बहनके आह्वानसे चकित होकर बोला—नहीं बहन, अभी दिये देता हूँ।

अपूर्वकी तरफ देखकर उसने हाथ जोड़के कहा—बाबू साहब, मैं गरीब आदमी हूँ; चार आने ही मेरे लिए बहुत हैं,—दया करके ले लीजिए।

विपिन फिर कोई एक कड़ा जवाब देना ही चाहता था कि अपूर्वने इशारेसे उसे मना कर दिया; परन्तु, इतना काण्ड हो जानेके बाद फिर उसी चार आनेके प्रस्तावसे उसे खुद भी घृणा मालूम हुई। अपनेको सम्हालते हुए उसने कहा—रहने दो बैरागी, तुम्हे कुछ भी न देना होगा।

एकादशी समझ गया,—यह गुस्सेकी बात है; एक उसाँस लेकर बोला—कलिकाल है ! सुविधा पानेपर क्या कोई दूसरेकी गरदन मरोड़नेसे बाज आता है ! दो घोषालजी, पाँच आने पैसे ही खर्च-खाते लिख दो; और क्या करोगे बताओ ? कहकर बैरागीने फिर एक लम्बी साँस ली। उसका चेहरा देखकर अपूर्वको अबकी हँसी आ गई। इस कुसीद-जीवी (सूद-खोर) वृद्धके लिए चार आने और पाँच आनेके बीच कितना बड़ा भेद है, इसे उसने मन ही मन समझ लिया और मन्द मुसकराकर कहा—रहने दो बैरागी, तुम्हें नहीं देना होगा। हम चार-पाँच आने पैसे चन्देमें नहीं लेते, अब हम लोग जाते हैं।

मालूम नहीं क्यों, अपूर्वको बहुत ही आशा थी कि पाँच-आनेके विरुद्ध कमसे कम दरवाजेकी ओटमेंसे अवश्य प्रतिवाद होगा। उसके अंचलका छोर

अब तक वहीं दीख रहा था; परंतु, उसने कोई बात नहीं कही। जानेसे पहले अपूर्वने सचमुच ही बड़े क्षोभके साथ मन ही मन कहा, ये लोग वास्तवमें अत्यन्त क्षुद्र हैं। दान देनेके बारेमें पाँच आनेसे ज्यादा ये सोच ही नहीं सकते। पैसे ही इनके प्राण हैं, पैसा ही इनका हड्डी-मांस है, पैसेके लिए संसारमें ऐसा कोई काम नहीं जो ये न कर सकते हों।

अपूर्वके अपने दलबल सहित उठ खड़े होते ही एक दस-ग्यारह वर्षके लड़केपर अनाथकी निगाह पड़ी। लड़केके गलेमें उत्तरीय*पड़ा था,—शायद, उसके घर पितृ-वियोग या ऐसी ही कोई दुर्घटना हुई होगी। उसकी विधवा माँ बरंडेमें खम्भेकी ओटमें बैठी थी। अनाथने आश्चर्यके साथ पूछा—पुंटू, तू यहाँ कैसे ?

पुंटूने उँगली दिखाकर कहा—मेरी माँ बैठी हैं। माँने कहा है, हमारे बहुत-सारे रुपया इनके पास जमा हैं। कहते हुए उसने एकादशीकी तरफ इशारा किया।

इस बातको सुनकर सभी कोई विस्मित और कुतूहली हो उठे। अन्त तक इसका क्या होता है,—यह देखनेके लिए अपूर्व, खूब जोरकी प्यास होते हुए भी, विपिनका हाथ पकड़कर बैठ गया।

एकादशीने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है बेटा ? कहाँ घर है ?

बच्चेने उत्तर दिया—मेरा नाम शशधर है, इन लोगोंके गाँवमें रहते हैं,—कालीदहमें।

"तुम्हारे बापका नाम क्या है ?"

लड़केकी तरफसे अनाथने जवाब दिया—इसके बाप बहुत दिन हुए मर गये। बाबा रामलोचन चटर्जी अपने लड़केकी मृत्युके बाद घर-गृहस्थी छोड़कर बाहर निकल गये थे; सात वर्ष बाद, महीना-भर हुआ, वे फिर घर लौट आये थे कि परसों बेचारोंके घर आग लग गई, और आग बुझानेमें जलकर मर गये। और कोई है नहीं, बस यह एक नाती ही श्राद्धका अधिकारी बच रहा है।

इस बातको सुनकर सभीने दुःख प्रकट किया, सिर्फ एक एकादशी ही चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर बाद उसने प्रश्न किया—रुपयोंकी हाथ-चिट्ठी है ? जाओ, अपनी माँसे पूछ आओ।

---

* बंगालमें माता-पिता या दादी-बाबा आदि किसीके मर जानेपर गलेमें कोरे कपड़ेकी एक धजी-सी पहनी जाती है, जो अशौच दूर होते तक रहती है और क्रिया-कर्मके दिन उतर जाती है। —अनुवादक।

लड़का माँसे पूछ आया और बोला—कागज-पत्र कोई नहीं हैं,—सब जल गये।

एकादशीने पूछा—कितने रुपये थे?

अबकी बार विधवाने आगे बढ़कर माथेकी धोती नीची करते हुए कहा—बाबाजी मरनेसे पहले कह गये हैं कि पाँच सौ रुपया जमा रखकर वे तीर्थयात्रा करने गये थे। बाबा, हम लोग बड़े गरीब हैं; सब रुपया न दो तो कमसे कम कुछ भीख ही हम लोगोंको दे दो। यह कहकर विधवा भीतर ही भीतर घुमड़-घुमड़के रोने लगी। घोषाल साहब अब तक खाता-बही लिखना छोड़कर एकाग्रचित्तसे सब सुन रहे थे; अब उन्होंने आगे बढ़कर प्रश्न किया—हम पूछते हैं, कोई गवाही-अवाही भी है?

विधवाने गरदन हिलाकर कहा—नहीं। हम लोग भी नहीं जानते थे। बाबाजी हम लोगोंसे छिपाके रुपये जमा करके चल गये थे।

घोषालने मृदु हास्यके साथ कहा—सिर्फ रोनेसे ही काम नहीं होता जी! यह सब नकद रुपये-पैसेका मामला ठहरा! गवाह नहीं, हाथ-चिट्ठी नहीं, तो फिर कैसे क्या होगा, बताओ?

विधवा फूट-फूटकर रोने लगी; परंतु, रोनेका नतीजा क्या होगा, सो किसीसे छिपा न था,—सब समझ रहे थे। अब एकादशीने बात की। घोषालकी तरफ देखकर कहा—हमें ख्याल आ रहा है, किसीने पाँच सौ रुपया जमा कराके फिर लिये नहीं हैं। तुम जरा पुराने खातोंमें ढूँढ़ो तो सही, कुछ लिखा-इखा है या नहीं?

घोषालने झल्लाकर कहा—कौन इतनी अबेरमें भूतकी बेगार करने जाय साहब? न गवाह हैं, न रसीद-वसीद ही कुछ—

बात खतम होनेके पहले ही दरवाजेके पीछेसे जवाब आया—रसीद नहीं है, तो क्या ब्राह्मणके रुपये ही डूब जायँगे? पुरानी बही देखिए,—आपसे न हो तो मुझे दीजिए मैं देखे देती हूँ।

सबने एक साथ विस्मित होकर दरवाजेकी तरफ आँख उठाकर देखा; मगर, जिसने हुक्म दिया था, वह दिखाई नहीं दी।

घोषालने जरा नरम होकर कहा—कई साल हो गये बेटी! इतने दिनोंके खाते ढूँढ़ निकालना आसान काम नहीं है। खाते बहियोंका कोई ठीक है, ढेर लगे हैं! हाँ, सो जमा होंगे तो मिलें क्यों नहीं! फिर विधवाकी तरफ मुखातिब होकर

कहा—तुम बेटी, रोओ मत,—इकके रुपये होंगे तो मिलेंगे क्यों नहीं ? अच्छा, कल हमारे घर आना; सब बातें पूछ-ताछकर बही-खाते देखके निकाल दूँगा। आज इतनी अबेर हो गई है; अभी तो होना मुश्किल है।

विधवाने उसी वक्त राजी होकर कहा—अच्छा, कल सबेरे ही आपके यहाँ आ जाऊँगी।

"आ जाना," कहकर घोपालने गरदन हिलाते हुए सामनेके बही-खाते सब, उस दिनके लिए, बन्द कर दिये।

परन्तु, पूछताछ करनेके बहाने विधवाको अपने घरपर बुलानेका अर्थ बिलकुल स्पष्ट था। किवाड़ोंकी ओटमेंसे गौरीने कहा—आठ साल पहलेकी बात है तो, १९५१ संवतका खाता जरा निकालिए तो सही; रुपये जमा हैं या नहीं, सब मालूम हो जायगा।

घोषालने कहा— इतनी जल्दी क्या पड़ी है, बेटी ?

गौरीने कहा—मुझे दीजिए, मैं देखे देती हूँ। ब्राह्मणके घरकी बहू दो कोस पैदल चलके आई है, फिर दो कोस इस घाममें पैरों चलके जायगी, और फिर कल आपके पास आयगी; इतनी झंझटकी जरूरत क्या है घोषाल काका ?

एकादशीने कहा—सच्ची ही तो कह रही है घोषालजी; ब्राह्मणकी बहूको झूट-मूट इधरसे उधर हैरान करना क्या अच्छा है ? देखो देखो, चटपट देख दो।

क्रुद्ध घोषाल महाशय तब बड़बड़ाते हुए उठे और बगलकी कोठरीमेंसे १९५१ सालका खाता निकाल लाये। दसेक मिनट पन्ने उलट-पलटकर सहसा बहुत ही खुश होकर बोल उठे—वाह ! अपनी गौरी बेटीकी क्या याददाश्त है ! ठीक उसी सालकी बहीमें जमा मिल गया ! यह रहा रामलोचन चटर्जीका जमा पाँच सौ—

एकादशीने कहा—अब जरा चटपट ब्याज तो जोड़ डालो, घोषालजी।

घोषालजीने आश्चर्यमें आकर कहा—अब ब्याज भी ?

एकादशीने कहा—क्यों, दोगे नहीं ? रुपया इतने दिनों तक काममें लगा रहा, रक्खा तो नहीं रहा ! आठ सालका सूद लगाओ,—इधरके कुछ महीनोंका छोड़ दो।

जोड़नेपर सूद और असल मिलाकर कुल साढ़े सातसौ रुपये हुए। एकादशीने बहनको लक्ष्य करके कहा—बहन, रुपये निकाल ला सन्दूकमेंसे। क्यों पुंटूकी

माँ, सब रुपये एक साथ ही ले जाओगी न ?

विधवाके अन्तरकी बात अन्तर्यामीने सुन ली, आँखें पोछते हुए उसने एकादशीसे कहा — नहीं तो, इतने मुझे नहीं चाहिए; अभी सिर्फ पचास रुपये दे दो ।

" सो ही ले जाओ बहू,—घोषालजी, बही मुझे दो जरा, सही कर दूँ; और बाकी रुपयोंका तुम एक रुक्का लिख दो । "

घोषालने कहा —मैं ही दस्तखत किये देता हूँ, आप क्यों—

एकादशीने कहा—नहीं नहीं, मुझे ही दो न,—अपनी आँखोंसे देख लूँ ।

कहते हुए उसने बही हाथमें ली, और आधेक मिनट उसे देख-दाखकर हँसते हुए कहा—घोषालजी, इसमें तो असली मोतीकी एक जोड़ी ब्राह्मणके नाम और भी जमा है । मैं तो जानता हूँ न,—आपको हर वक्त एक-सा नहीं दिखाई देता ।

यह कहता हुआ एकादशी दरवाजेकी तरफ देखकर जरा हँसा । इतने आदमियोंके सामने मालिककी व्यंग्योक्तिसे घोषालका मुँह काला हो गया ।

उस दिनका सब काम हो जानेपर अपूर्व जब अपने साथियोंको लेकर तपते हुए रास्तेपर निकल आया, तो उसके भीतर एक क्रान्ति-सी मची हुई थी । घोषाल साथमें था, उसने विनयके साथ आह्वान करके कहा—आइए, इस गरीबके घर गुड़से ही सही, कमसे कम जरा पानी तो पी लीजिए ।

अपूर्व मुँहसे कुछ न कहकर चुपचाप पीछे पीछे चलने लगा । घोषालकी देह जली जा रही थी, उसने एकादशीको लक्ष्य करके कहा—देखी आपने इस छोटी जातके नालायककी हिमाकत ! आप जैसे ब्राह्मणोंके पैरोंकी धूल पड़ी घरमें,—हरामजादेकी सोलह पीढ़ियोंका अहोभाग्य समझो ! साला पिशाच है न, पाँच आने पैसे देकर भिखारी टरकाना चाहता है ।

विपिनने कहा—दो दिन ठहर जाइए न; हरामजादे महापापीको यहाँ भी नाई धोबीका बहिष्कार कराकर पाँच आने पैसे देनेका मजा चखाये देता हूँ ! राखाल बाबू हमारे रिश्तेदार हैं,—हाँ, यह याद रखिएगा घोषाल साहब !

घोषालने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ । दोनों शाम संध्या-पूजा बिना किये पानी तक नहीं पीता । दो मोतियोंके लिए इस टीकाटीक दोपहरीमें कैसा मेरा मान गल्त किया, आखोंसे देख तो लिया आपने ! नालायकका भला होगा ? इसका कभी खयाल भी मत कीजिए । और वह हरामजादी, जिसे छूनेसे नहाना पड़ता है, क्या करती है ! ब्राह्मणके पीनेके लिए पानी ले आती है ! रुपयेकी ठसक तो देखो जरा !

अपूर्वने अब तक एक भी बातमें अपनी बात नहीं मिलाई थी; चलते चलते सहसा वह बीच रास्तेमें खड़ा हो गया, बोला—अनाथ, मैं वापस लौट रहा हूँ भाई,—मुझे बड़ी ज़ोरकी प्यास लगी है।

घोषालने आश्चर्यके साथ कहा—लौटकर कहाँ जायँगे ? वह रहा, सामने ही तो मेरा मकान दीख रहा है।

अपूर्वने सिर हिलाकर कहा—आप इन लोगोंको ले जाइए,—मैं जाता हूँ वहीं एकादशीके घर पानी पीने।

एकादशीके घर पानी पीने ! सबके सब एक साथ त्योरियाँ चढ़ाकर खड़े हो गये। विपिनने उसका हाथ पकड़कर एक झटका देते हुए कहा—चल चल,—भरी दुपहरीमें,—ऐसी कड़ी धूपमें, बीच रास्तेपर मज़ाक अच्छा नहीं लगता। तुम तो जरूर जाओगे,—ऐसे ही हो न ! तुम पीओगे एकादशीकी बहनका छुआ पानी !

अपूर्वने अपना हाथ खींचकर दृढ़ताके साथ कहा—हाँ हाँ, सचमुच ही मैं उसका लाया हुआ वही पानी पीने जा रहा हूँ। तुम लोग घोषाल महाशयके यहाँसे खा-पी आओ,—मैं उस पेड़के नीचे बैठा मिलूँगा।

उसके शान्त और स्थिर कंठ-स्वरसे हतबुद्धि होकर घोषालने कहा—इसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है, सो मालूम है ?

अनाथने कहा—पागल तो नहीं हो गये ?

अपूर्वने कहा—सो तो नहीं मालूम। पर, प्रायश्चित्त करना पड़ेगा,—तो वह उस समय धीरे-सुस्ते बैठकर सोचा जायगा। लेकिन, अभी तो नहीं रुक सकता। —कहता हुआ वह उसी चटकती हुई धूपमें जल्दी जल्दी एकादशीके घरकी ओर चल दिया।

बाल्य-स्मृति

नामकरण-संस्कारके समय, या तो मैं ठीक तौरसे तैयार नहीं हो पाया था, या फिर बाबाका ज्योतिष शास्त्रमें विशेष दखल न था,—किसी भी कारणसे हो, मेरा नाम 'सुकुमार' रखा गया। बहुत दिन न लगे, दो ही चार सालमें बाबा समझ गये कि नामके साथ मेरा कोई मेल नहीं मिलता। अब मैं बारह-तेरह वर्ष बादकी बात कहता हूँ। हालाँ कि मेरे आत्म-परिचयकी सब बातें कोई अच्छी तरह समझ नहीं सकेगा,—फिर भी—

सुनिए, हम लोग गँवई-गाँवके रहनेवाले हैं। बचपनसे मैं वहीं रहता आया हूँ। पिताजी पछाँहमें नौकरी करते थे। मेरा वहाँ बहुत कम जाना होता था,—नहींके बराबर। मैं दादीके पास गाँवहीमें रहा करता। घरमें मेरे ऊधमकी कोई हद न थी। एक वाक्यमें कहा जाय तो यों कहना चाहिए कि मैं एक छोटा-सा रावण था। बूढ़े बाबा जब कहते, 'तू कैसा हो गया है ? किसीकी बात ही नहीं मानता। अब मैं तेरे बापको चिट्ठी लिखता हूँ।' तो मैं जरा हँसकर कहता 'बाबा वे दिन अब लद गये; बापकी तो चलाई क्या, अब मैं बापके बापसे भी नहीं डरता।' और कहीं दादी मौजूद रहतीं, तो फिर डरने ही क्यों लगा ? बाबाको वे ही कहतीं, 'क्यों, कैसा जवाब मिला ?—और छेड़ोगे उसे ?'

बाबा अगर नाराज़ होकर बाबूजीको चिट्ठी भी लिखते, तो उसी वक्त उनकी अफीमकी डिबिया दुबका देता। फिर जब तक उनसे चिट्ठी फड़वाकर फिंकवा न देता, तब तक अफीमकी डिबिया न निकालता। इन सब औठपावोंके डरसे, खासकर नशेकी तलबमें खलल पड़ जानेसे फिर वे मुझसे कुछ नहीं कहते। मैं भी मौज़ करता।

पर, सभी सुखोंकी आखिर एक सीमा है। मेरे लिए भी वही हुआ। बाबाके चचेरे भाई गोविन्द बाबू इलाहाबादमें नौकरी करते और वहीं रहते थे। अब वे पेन्शन लेकर गाँवमें आकर रहने लगे। उनके नाती श्रीमान् रजनीकान्त भी बी० ए० पास करके उनके साथ आये। मैं उन्हें 'सँझले भइया' कहता। पहले मुझसे उनका विशेष परिचय नहीं था। वे इस तरफ बहुत कम आते थे और उनका मकान भी अलग था,—क़भी आते भी, तो मेरी ओर .ज्यादा ध्यान नहीं देते। कभी सामना हो जाता तो, 'क्यों रे, क्या करता है,—क्या पढ़ता है' के सिवा और कुछ नहीं कहते।

अबकी बार जो वे आये, तो गाँवमें जमकर बैठे और मेरी ओर .ज्यादा ध्यान देने लगे। दो चार दिनकी बातचीतसे ही उन्होंने मुझे ऐसा बसमें कर लिया कि उन्हें देखते ही मुझे डर-सा हो जाता, मुँह सूख जाता, छाती धड़कने लगती,—जैसे मैंने कोई भारी कसूर किया हो, और उसकी न जाने कितनी सजा मिलेगी! और इसमें तो कोई शक ही न था कि उन दिनों मुझसे अकसर कसूर हुआ करता। हर वक्त कुछ न कुछ शरारत मुझसे होती ही रहती। दो चार करनेके काम और दो चार औठपाव किये बिना मुझे चैन कहाँ?

इतना डरनपर भी भइयाको मैं चाहता खूब था। भाई भाईको इतना मान सकता है, यह मुझे पहले नहीं मालूम था। वे भी मुझे खूब प्यार करते थे। उनके निकट भी मैं कितनी ही शरारतें कितने ही कुसूर करता था,—किन्तु, वे कुछ कहते नहीं थे; और कुछ कहते भी, तो मैं समझता कि बड़े भइया ठहरे, थोड़ी देर बाद भूल जायँगे,—उन्हें याद थोड़े ही रहता है!

अगर वे चाहते, तो शायद मुझे सुधार सकते; पर, उन्होंने कुछ भी नहीं किया। उनके देश आ जानेसे मैं पहलेकी तरह स्वाधीन तो न रहा; पर फिर भी जैसा हूँ, मजेमें हूँ।

रोज़ बाबाकी तमाखू चुराकर पी जाता। बूढ़े बाबा बेचारे कभी खाटके सिरहने, कभी तकियेकी खोलीके भीतर,—कभी कहीं, कभी कहीं, तमाखू छिपा रखते, पर बन्दा ढूँढ़-ढाँढ़कर निकाल ही लेता और पी जाता। खाता-पीता मस्त रहता, मौजसे कटती। कोई झंझट नहीं, बला नहीं,—पढ़ना-लिखना तो एक तरहसे—जो छोड़ ही दिया समझो। बागमें जाकर चिड़ियाँ मारता, गिलहरियाँ मारकर भुना 'बात' खाता, जंगलमें जाकर गड्ढों गड्ढोंमें खरगोश ढूँढ़ता फिरता,—यही मेरा

था। न किसीका कोई डर न कोई फिकर।

पिताजी बक्सरमें नौकरी करते। वहाँसे न मुझे वे देखने आते, और न मारने आते। बाबा और दादीका हाल मैं पहले ही कह चुका हूँ। लिहाज़ा, एक वाक्यमें यों कहना चाहिए कि 'मैं मजेमें था।'

एक दिन दोपहरको घर आकर दादीके मुँहसे सुना कि मुझे सँझले भइयाके साथ कलकत्तेमें रहकर पढ़ना-लिखना पड़ेगा। आरामसे भर-पेट खा-पीकर हुक्का भरकर मैं बाबाके पास पहुँचा और बोला—बाबा मुझे कलकत्ते जाना पड़ेगा?

बाबाने कहा—हाँ।

मैंने पहलेहीसे सोच रखा था कि यह सब बाबाकी चालाकी है। इसलिए, कहा—यदि जाऊँगा तो आज ही जाऊँगा।

बाबाने हँसते हुए कहा—इसके लिए चिन्ता क्यों करते हो बेटा? रजनी आज ही कलकत्ते जायगा। मकान ठीक हो गया है, सो आज ही तो जाना होगा।

मैं आग-बबूला हो उठा। एक तो उस दिन बाबाकी छिपाई हुई तमाखू ढूँढ़नेपर भी नहीं मिली,—जो एक चिलम मिली थी वह मेरी एक फूँकके लिए भी नहीं थी,—उसपर यह चालाकी! परन्तु, मैं ठगा गया था अपने आप कबूल करके, फिर पीछे कैसे हटूँ? लिहाज़ा, उसी दिन मुझे कलकत्तेके लिए रवाना होना पड़ा। चलते वक्त बाबाके पैर छुए, और मैं मन ही मन बोला—भगवान करें, कल ही तुम्हारे कारजमें घर लौट आऊँ। उसके बाद फिर मुझे कौन कलकत्ते भेजता है, देख लूँगा।

२

कलकत्ते मैं पहले ही पहल आया। इतना बड़ा शहर मैंने पहले कभी नहीं देखा था। मैंने मन ही मन सोचा,—अगर मैं गंगाकी छातीपर तैरते हुए इस लकड़ी-लोहेके पुलपर ऐसी भीड़में, या वहाँ,—जहाँ झुंडके झुंड मस्तूलवाले बड़े बड़े जहाज़ खड़े हैं,—खो गया तो फिर, कभी घर पहुँच सकूँगा, इसकी कोई उम्मीद ही नहीं। कलकत्ता मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगा। इतनी खाउशतमें भला कोई चीज़ अच्छी लग सकती है? आगे कभी लगेगी, इसका भी भी मंसा नहीं कर सका।

कहाँ गया हमारा वह नदीका किनारा,—वे बाँसोंके भिड़े, बेलके झाड़, मित्र-परिवारके बगीचेके कोनेका वह अमरूद,—कुछ भी तो नहीं है ! यहाँ तो सिर्फ बड़े बड़े ऊँचे मकान, गाड़ी-घोड़े, आदमियोंका भीड़-भड़क्का, लम्बी-चौड़ी सड़कें ही दिखाई देती हैं,—मकानके पीछे ऐसा एक बाग-बगीचा भी तो नहीं, जहाँ छिपकर एक चिलम तमाखू पी सकूँ। मुझे रोना आ गया।. आँसू पोंछकर मन ही मन कहने लगा,—भगवानने जीवन दिया है तो भोजन भी वे ही देंगे,—'जिसने दिया है तनको, वही देगा कफ़नको।'

कलकत्ते आया हूँ, स्कूलमें भरती किया गया हूँ, अच्छी तरह पढ़ता-लिखता हूँ; लिहाज़ा आजकल मैं 'अच्छा लड़का' हो गया हूँ। देशमें ज़रूर मेरा नाम जाहिर हो गया था;—खैर, उस बातको जाने दो।

भइयाके आत्मीय मित्रोंने मिलकर एक 'मेस' बना लिया है, जिसमें हम चार आदमी रहते हैं—भइया, मैं, राम बाबू और जगन्नाथ बाबू। राम बाबू और जगन्नाथ बाबू सँझले भइयाके मित्र हैं। इनके सिवा एक नौकर और एक ब्राह्मण रसोइया भी है।

गदाधर रसोइया मुझसे तीन चार वर्ष बड़ा था। ऐसा भला आदमी मैंने पहले कभी नहीं देखा। मुहल्लेके किसी भी लड़केसे मेरी बातचीत नहीं हुई और न किसीसे मेल-जोल ही हुआ। मगर गदाधर, बिलकुल भिन्न प्रकृतिका आदमी होनेपर भी, मेरा अन्तरंग मित्र हो गया। मेरे साथ उसकी खूब घुटती,—कितनी गप-शप उड़ती, इसका कोई ठिकाना नहीं। वह मेदिनीपुर जिलेके एक गाँवका रहनेवाला था, वहाँकी बातें और उसका बाल्य इतिहास आदि मुझे बड़ा अच्छा लगता था। उसके गाँवकी बातें मैंने इतनी बार सुनी हैं कि मुझे अगर उसके गाँवमें आँखोंपर पट्टी बाँधकर अकेला छोड़ दिया जाय तो, शायद मैं तमाम गाँवमें और उसके आस-पास मज़ेमें घूम-फिर सकता हूँ। इतवारको मैं उसके साथ किलेके मैदानमें घूमने जाया करता। शामको रसोई-घरमें बैठकर 'कोट-पीस' खेला करता। रोटी खानेके बाद चौका उठ जानेपर उसके छोटे हुक्केसे दोनों मिलकर तमाखू भी पी लिया करते। सभी काम हम दोनों मिलकर एक साथ करते। मुहल्ले-पड़ोसमें और किसीसे मेरी जान-पहिचान नहीं हुई। मेरा तो साथी-संगी, यार-दोस्त,—गाँवका भोला, मुन्नी, लल्लू,—जो कुछ है, सब वही है। उसके मुँहसे मैंने कभी, 'छोटे मुँह बड़ी बात'

नहीं सुनी। झूठमूठ ही सब उसका निरादर करते। इससे मेरा जी जलने लगता; पर, वह अपनी ज़बानसे कभी किसीको जवाब न देता,—जैसे वास्तवमें वह दोषी ही हो।

सबको खिला-पिलाकर सबसे पीछे जब वह रसोईघरके एक कोनेमें छिपकर छोटी-सी पीतलकी थालीमें खाने बैठता, तो मैं हजार काम छोड़कर वहाँ पहुँच जाता। बेचारेकी तकदीर ही ऐसी थी कि पीछेसे उसके लिए कुछ बचता न था; और तो क्या, भात तक कम पड़ जाता। और किसीके खानेके समय मैं कभी उपस्थित नहीं रहा; परन्तु, ऐसा तो मैंने कभी नहीं देखा कि मुझे खाते वक्त क़भी रोटी, दाल, भात, घी, तरकारी, कम पड़ी हो। इससे मुझे बड़ा बुरा मालूम होता था।

छोटेपनमें मैंने अपनी दादीके मुँहसे सुना है, वे मेरे लिए कहा करती थीं, 'लड़का आधा पेट खा-खाकर सूखके काँटा हो गया है,—कैसे बचेगा?' मगर मैं दादी-कथित 'भर-पेट' कभी नहीं खा सकता था। सूख जाऊँ चाहे काँटा हो जाऊँ, मुझे 'आधा-पेट' खाना ही अच्छा लगता था। अब कलकत्ते आनेके बाद समझा कि उस आधे-पेट और इस आधे-पेटमें कितना अन्तर है! इस बातका मुझे कभी अनुभव नहीं हुआ कि किसीको भर-पेट खाने न मिले, तो आँखोंमें आँसू आ जाते हैं! पहले मैंने न जाने कितनी बार बाबाकी थालीमें पानी डालकर उन्हें खाने नहीं दिया है, दादीके ऊपर कुत्तेके बच्चेको छोड़कर उन्हें नहाने-धोनेके लिए बाध्य किया है। फिर, उनका खाना नहीं हुआ; मगर, उनकी आँखोंमें आँसू कभी नहीं आये। दादी, बाबा, अपने घरके लोग,—मेरे पूज्य, जो मुझे खूब प्यार करते थे, उनके लिए मुझे कभी दुःख नहीं हुआ; बल्कि, जान-बूझकर उन्हें अध-भूखा और बिलकुल भूखा रखकर मुझे परम सन्तोष हुआ है। और इस गदाधरको देखो,—न कुनबेका न गोतका,—इसके लिए मेरी आँखोंमें बिना बुलाये पानी आ जाता है।

कलकत्ते आकर मुझे यह हो क्या गया,—मेरी कुछ समझमें नहीं आता। आखिर आँखोंमें इतना पानी आता कहाँसे है, कुछ पता नहीं। मुझे किसीने रोते कभी नहीं देखा। किसी बातपर जिद पकड़ जानेपर पाठशालाके पंडितजीने मेरी पीठपर साबुतकी साबुत खजूरकी छड़ियाँ तोड़ दी हैं; फिर भी वे मुझे कभी रुला नहीं सके। लड़के कहते, 'सुकुमारकी देह पत्थरकी है।' मैं मन ही मन

कहता, ' देह नहीं, बल्कि मन पत्थरका है। मैं नन्हें बच्चेकी तरह रोने नहीं लगता। ' दर-असल रोनेमें मुझे बड़ी शरम मालूम होती थी,—अब भी होती है; पर, अब सम्हाले सम्हलता नहीं। छिपकर, जहाँ कोई देख न सके, रो लिया करता हूँ। जरा रोकर झटपट आँखें पोंछ-पाँछके सम्हल जाता हूँ। जब स्कूल जाता हूँ तो रास्तेमें सैकड़ों भिखारी भीख माँगते नज़र आते हैं। किसीके हाथ नहीं है, किसीके पैर नहीं है, कोई अन्धा है,—इस तरह न जाने कितने तरहके दुखी देखता हूँ। मैं तो तिलक लगाकर खंजरी बजाकर जो ' जय राधे ' कहकर भीख माँगते हैं, उन्हें ही जानता था। फिर ये सब भिखारी किस तरहके हैं ? मैं भीतर ही भीतर बहुत ही दुःखित होकर कहता, ' भगवान्, इन्हें मेरे गाँवमें भेज दो। '

खैर, अभागे भिखारियोंकी बात जाने दो, अब मैं अपनी बात कहता हूँ। देखते देखते आँखें इसकी आदी हो गई; पर, मैं ' विद्यासागर ' न बन सका। बीच बीचमें हमारे देशकी माता सरस्वती न जाने कहाँसे आकर मेरे सिरपर सवार हो जाती, मैं नहीं कह सकता। उनकी आज्ञासे कभी कभी मैं ऐसा सत्कर्म कर डालता था कि अब भी मुझे उन सरस्वतीजीसे नफरत हो जाया करती है। डेरेपर किसका कौन-सा अनिष्ट किया जा सकता है,—रात-दिन मैं इसी फिकरमें रहता।—एक दिनकी बात है, राम बाबूने घंटे-भर मेहनत करके अपनी धोती चुनकर रखी; वे शामको घूमने जायेंगे,—तब पहनकर जायँगे। मैंने, मौका पाकर, उसे खोलकर सीधा करके रख दिया। शामको आकर धोतीकी हालत देखते ही बेचारे तकदीर ठोंककर बैठ गये। मेरी खुशीका क्या ठिकाना ? फूला नहीं समाया।—जगन्नाथ बाबूका आफिस जानेका समय हो गया है, जल्दी जल्दी खा-पीकर किसी तरह आफिस तक पहुँचना चाहते हैं। मैंने ठीक मौकेसे उनकी अचकनके बटन काटकर फेंक दिये। स्कूल जानेसे पहले ज़रा झाँककर देख गया,—बेचारे चिल्लाकर रोनेकी तैयारी कर रहे हैं। मैं खुशीके मारे रास्ते भर हँसता रहा। शामको आफिससे लौटकर बोले, ' मेरे बटन कम्बख्त गदाधरने चुराकर बेच डाले हैं, निकाल दो नालायकको। ' जगन्नाथ बाबूके बटन-हरणके मामलेपर भइया और राम बाबू भीतर ही भीतर खूब हँसने लगे। भइयाने कहा, ' कितने ही तरहके चोर होते हैं, कोई ठीक है, पर बटन तोड़कर बेच खानेवाला चोर तो आज ही सुना ! ' जगन्नाथ बाबू भइयाकी इस चुटकीसे और भी आग-

बबूला हो गये। बोले—'नालायकने सबेरे नहीं लिये, शामको नहीं लिये, रातको नहीं लिये, ठीक आफिस जाते वक्त,—बदमाशी तो देखो ! दुर्गतिकी हद कर दी।'—उन्हें एक काला फटा कुरता पहनकर आफिस जाना पड़ा।

सब हँस पड़े, जगन्नाथ बाबूको भी हँसना पड़ा। पर, मैं नहीं हँस सका। मुझे डर हो गया,—कहीं गदाधरको सचमुच ही न निकाल दें। वह बेचारा बिलकुल बेवकूफ है, शायद कुछ कहेगा भी नहीं, चुपचाप सारा कसूर अपने ऊपर ले लेगा। अब ?

भइया शायद समझ गये कि किसने बटन लिये हैं। गरीब गदाधरपर कोई जुल्म नहीं किया। पर, मैंने भी उस दिनसे प्रतिज्ञा कर ली कि अब ऐसा काम कभी न करूँगा जिससे मेरे बदले दूसरेपर आफत आये।

ऐसी प्रतिज्ञा मैंने पहले कभी नहीं की; और करता भी या नहीं,—नहीं कह सकता। सिर्फ गदाधरके कारण ही मुझे अपने मार्गसे विचलित होना पड़ा। मुझे उसने मिट्टी कर दिया।

इस बातको कोई नहीं कह सकता कि किस तरह किसका चरित्र सुधर जाता है। पंडितजी, बाबा,—और भी कितने ही महाशयोंके लाख कोशिश करनेपर भी जिस बातकी प्रतिज्ञा मैंने कभी नहीं कीं,—और न शायद करता,—एक गदाधर महाराजका चेहरा देखकर उस बातकी प्रतिज्ञा कर बैठा। उसके बाद इतने दिन बीत गये,—इस बीचमें कभी मेरी प्रतिज्ञा भंग हुई या नहीं, मैं नहीं कह सकता। मगर, इतना ज़रूर है कि मैंने कभी जान-बूझकर कोई प्रतिज्ञा भंग नहीं की।

अब और एक आदमीकी बात कहता हूँ। वह था हम लोगोंका नौकर रामा। रामा जातिका कायथ या ग्वाला ऐसा ही कुछ था। कहाँका रहनेवाला था, सो भी मैं नहीं कह सकता। उस जैसा फुरतीला और होशियार नौकर मेरे देखनेमें नहीं आया। अगर फिर कभी उससे भेंट हो गई, तो उसके गाँवका पता जरूर पूछ लूँगा।

सभी कामोंमें रामा चरखेकी तरह घूमता रहता,—अभी देखा कि रामा कपड़े धो रहा, तुरत देखता हूँ कि भइया नहाने बैठे हैं तो वह उनकी पीठ रगड़ रहा है। उसके बाद ही देखा तो पान लगानेमें व्यस्त है। इस तरह, वह हरवक्त दौड़-धूप करता रहता। भइयाका वह 'फेवरिट,'—बड़ा कामका, प्यारा, नौकर था। पर मुझे वह देखे न सुहाता। उस नालायकके लिए

अकसर मुझे भइयासे खरी-खोटी सुननी पड़तीं । खासकर गदाधरको वह अकसर तंग किया करता । मैं उससे बहुत चिढ़ गया था । मगर, इससे क्या होता,— वह ठहरा भइयाका 'फेवरिट'! राम बाबू भी उसे फूटी आँखों न देख सकते थे । वे उसे 'रूज' (='रंगा स्यार') कहा करते थे । उस समय इस शब्दकी व्याख्या वे खुद न कर सकते थे; मगर, हम यह खूब समझते थे कि रामा दर असल 'रूज' है । उनके चिढ़नेके अनेक कारण थे । मुख्य कारण यह था कि रामा अपनेको 'राम बाबू' कहा करता था । भइया भी कभी कभी उसे 'राम बाबू' कहकर पुकारा करते थे । मगर राम बाबूको वह सब अच्छा न लगता था । खैर, जाने दो इन व्यर्थकी बातोंको—

एक दिन शामको भइया एक नया लैम्प खरीद लाये । बहुत बढ़िया चीज़ थी, करीब पचास साठ रुपये दाम होंगे । शामको जब सब घूमने चले गये, तब मैंने गदाधरको बुलाकर उसे दिखाया । गदाधरने ऐसी बत्ती कभी नहीं देखी थी । वह बहुत ही खुश हुआ, और दो एक बार उसने उसे इधर-उधर करके देखा-भाला । इसके बाद वह अपने कामसे चला गया । पर मेरी 'क्यूरियासिटी' (=कुतूहल) शान्त नहीं हुई ।—मैं उसकी चिमनी खोलकर देखना चाहता था कि कैसे खुलती है । देखूँ, कि उसके भीतर कैसी मशीन है ।—बहुत खोलकर हिलाया डुलाया, इधर-उधर किया, घुमाने-फिरानेकी कोशिश की; पर, खोल न सका । बहुत 'ऑब्ज़र्वेशन'के (=देख-भाल और जाँच-विचारके) बाद मैंने देखा कि नीचे एक स्क्रू है, लिहाज़ा मैंने उसे घुमाया । घुमा ही रहा था कि चटसे उसका नीचेका हिस्सा अलग हो गया और जल्दीमें मैं उसे थाम न सका । नतीज़ा यह हुआ कि उसका शीशा टेबिलसे नीचे गिरकर चकनाचूर हो गया ।

* * * *

३

उस दिन बहुत रात बीते मैं लौटा । घर आकर देखा,—वहाँ बड़ी हाय-तोबा मची हुई है । गदाधरको चारों तरफसे घेरकर सब लोग बैठे हैं । गदाधरसे जिरहकी जा रही है । भइया खूब बिगड़ रहे हैं ।

गदाधरकी आँखोंसे टपटप आँसू गिर रहे थे । वह कह रहा था—बाबूजी, मैंने इसको जरा छुआ जरूर था, पर तोड़ा नहीं; सुकुमार बाबूने मुझे दिखाया,—

मैंने सिर्फ देखा, उसके बाद वे घूमने चले गये, मैं भी रसोई बनाने चला गया।

किसीने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया। प्रमाणित हो गया कि उसीने चिमनी तोड़ी है। उसकी तनखा बाकी थी, उसमेंसे साढ़े तीन रुपया काटकर नई चिमनी मँगाई गई। शामको जब बत्ती जलाई गई, तो सब बहुत खुश हुए; सिर्फ मेरी दोनों आँखें जलने लगीं। हर वक्त मनमें यही खयाल आने लगा,—मानो, मैंने उसकी माके साढ़े तीन रुपये चुरा लिये हैं।

तब मुझसे वहाँ रहा नहीं गया। रो-बिलखकर किसी तरह भइयाको राजी करके मैं गाँव पहुँच गया। सोचा था, दादीसे रुपये लाकर चुपकेसे साढ़े तीनकी जगह सात रुपये गदाधरको दे दूँगा। मेरे पास उस वक्त रुपये बिलकुल न थे। सब रुपये भइयाके पास थे। इसीलिए, रुपयेके लिए मुझे देश आना पड़ा। सोचा था, कि एक दिनसे अधिक नहीं ठहरूँगा। मगर, हुआ कुछ और ही। यद्यपि बाबाके कारजमें अब भी बहुत दिन बाकी थे, फिर भी, सात-आठ दिन वहाँ बीत ही गये।

सात-आठ दिन बाद फिर कलकत्ते पहुँचा। मकानमें पैर रखते ही पुकारा, 'गदा!' पर किसीने जवाब नहीं दिया। फिर बुलाया, 'गदाधर महाराज!' अबकी बार भी जवाब नदारद! फिर कहा, 'गदा!' कि रामाने आकर कहा—छोटे बाबू, अभी आ रहे हैं क्या?

"हाँ, हाँ, अभी चला ही आ रहा हूँ। महाराज कहाँ है?"

"महाराज तो नहीं हैं।"

"कहाँ गया है?"

"बाबूने उसे निकाल दिया?"

"निकाल दिया?—क्यों"

"चोरी की थी, इसलिए।"

पहले बात मेरी ठीकसे समझमें नहीं आई, इसीसे कुछ देर तक मैं रामाका मुँह देखता रहा। रामा मेरे मनका भाव ताड़ गया; ज़रा मुसकराकर बोला—छोटे बाबू, आप ताज्जुब कर रहे हैं! मगर उसे आप लोग पहचानते न थे,—इसीसे इतना चाहते थे। वह छुपी हुई डाइन जैसा था बाबू, उस भीगी बिल्लीको मैं ही अच्छी तरह जानता था।

किस तरह वह छुपी हुई डाइन था, और क्यों मैं उस भीगी बिल्लीको नहीं पहचान सका,—यह मेरी समझमें कुछ न आया। मैंने पूछा—किसके रुपये

चुराये थे उसने ?

"बड़े बाबूके।"

"कहाँ थे रुपये ?"

"कोटकी जेबमें।"

"कितने रुपये थे ?"

"चार रुपये।"

"देखा किसने था ?"

"आँखोंसे तो किसीने नहीं देखा, पर देखा ही समझिए।"

"क्यों ?"

"इसमें पूछनेकी कौन-सी बात है ? आप घरमें थे नहीं, राम बाबूने लिये नहीं; जगन्नाथ बाबू ले नहीं सकते, मैंने लिये नहीं;—तो फिर गये कहाँ ? लिये किसने ?"

"अच्छा, तो तूने उसे पकड़ा है ?

रामाने हँसते हुए कहा, "और नहीं तो कौन पकड़ता !"

ठनठनियाका जूता आप लोग आसानीसे खरीद सकते हैं। ऐसा मज़बूत जूता शायद और कहीं नहीं बनता। उसीसे मैंने उसकी खूब...

मैं रसोईमें जाकर रो पड़ा। उसका वह छोटा-सा काला हुक्का एक कोनेमें पड़ा था, उसपर धूल जम गई है। आज चार पाँच रोज़से उसको किसीने छुआ भी नहीं, किसीने पानी तक नहीं बदला। दीवारपर एक जगह कोयलेसे लिखा हुआ है, 'सुकुमार बाबू, मैंने चोरी की है। अब मैं यहाँसे जाता हूँ। अगर जिन्दा रहा, तो फिर कभी आऊँगा।'

मैं तब लड़का ही तो था। बिलकुल बच्चेकी तरह उस हुक्केको छातीसे लगा कर फूट-फूटकर रोने लगा। क्यों ? इसकी वजह मुझे नहीं मालूम।

फिर मुझे उस मकानमें अच्छा नहीं लगने लगा। शामको घूम-फिरकर एक बार रसोईमें जाता और दूसरे रसोइयाको खाना बनाते देख चुपचाप लौट आता। अपने कमरेमें आकर किताब खोलकर पढ़ने बैठ जाता। कभी कभी मुझे भइया भी देखे नहीं सुहाते। रोटी तक मुझे कड़ुवी मालूम होने लगती।

* * *

बहुत दिनों बाद, एक रोज़ मैंने भइयासे कहा—बड़े भइया, क्या किया तुमने ?

" किसका क्या किया ? "

गदाने तुम्हारे रुपये कभी नहीं चुराये। सभी जानते हैं, मैं गदाधर महाराजको बहुत चाहता था।

भइयाने कहा—हाँ, काम तो अच्छा नहीं हुआ, सुकुमार। पर, अब तो, जो होना था सो हो गया। लेकिन, रामाको तूने इतना मारा क्यों था ?

" अच्छे मारा था, क्या मुझे भी निकाल दोगे ? "

भइयाने मेरे मुँहसे कभी ऐसी बात नहीं सुनी। मैंने फिर पूछा—तुम्हारे कितने रुपये वसूल हो गये ?

भइया बड़े दुखित हुए, बोले—काम ठीक नहीं हुआ। तनखाके ढाई रुपये हुए थे, सो सब काट लिये। मेरी इतनी इच्छा नहीं थी।

मैं जब तब सड़कोंपर घूमा करता। दूरपर अगर किसीको मैली चादर ओढे और फटी चट्टी चटकाते हुए जाते देखता, तो मैं फौरन दौड़ा दौड़ा उसके पास पहुँच जाता; पर, मेरे मनका अरमान पूरा न होता, मेरी आशा नित्य निराशामें परिणत होने लगी। मैं अपने मनकी बात किससे कहूँ ?

करीब पाँच महीने बाद भइयाके नाम एक मनीआर्डर आया—डेढ़ रुपयेका। भइयाको मैंने उसी रोज़ आँसू पोंछते देखा। उसकी कूपन अभी तक मेरे पास मौजूद है।

कितने वर्ष बीत गये, कोई ठीक है! मगर आज भी गदाधर महाराज मेरे हृदयमें आधी जगह घेरे हुए हैं।

समाप्त